

एम.ए.(हिंदी)

सेमेस्टर-IV

विकल्प (ग) : नाटक एवं रंगमंच  
प्रश्नपत्र 4013 : भारतीय भाषाओं का रंगमंच  
(रचनाओं के माध्यम से)

अध्ययन सामग्री : इकाई 1-3



मुक्त शिक्षा विद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी-विभाग

संपादक : डॉ. सुधीर कुमार शर्मा

स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम

विकल्प (ग) : नाटक एवं रंगमंच  
प्रश्नपत्र 4013 : भारतीय भाषाओं का रंगमंच  
(रचनाओं के माध्यम से)

अध्ययन-सामग्री : इकाई 1-3

अनुक्रम

इकाई-1 : तुगलक – गिरीश कर्नाड	–डॉ. जयदेव तनेजा
इकाई-2 : स्कन्दगुप्त (जयशंकर प्रसाद)	–डॉ. रमेश कुमारी खनेजा
इकाई-3 : पगला घोड़ा (बादल सरकार)	–डॉ. जयदेव तनेजा

संपादक :  
डॉ. सुधीर कुमार शर्मा



मुक्त शिक्षा विद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

5, कैवेलरी लेन, दिल्ली-110007

## तुगलक – गिरीश कर्नाड

### ‘तुगलक’ का रचना-विधान तथा उसकी मंचीय-प्रस्तुति

डॉ. जयदेव तनेजा

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,

सनातन धर्म कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

‘तुगलक’ कन्नड़ नाट्य-साहित्य के युवा लेखक और विख्यात फिल्म अभिनेता गिरीश कर्नाड का ऐतिहासिक नाटक है जिसका उर्दू अनुवाद सुप्रसिद्ध अभिनेता-निर्देशक डॉ. ब.व. कारंत ने 1963 में किया था। इसका प्रथम प्रकाशन ‘आज के रंग-नाटक’ नामक संग्रह में 1975 में हुआ और स्वतंत्र पुस्तक के रूप में दिसम्बर, 1977 में। इस नाटक के प्रदर्शन और प्रकाशन ने इसके लेखक को तुरन्त राष्ट्रीय स्तर के नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। यह विडम्बना ही है कि ‘तुगलक’ के प्रदर्शन पहले हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में हुए और उनके बाद कन्नड़ में इसकी प्रस्तुति की गई।

कन्नड़ नाटक और रंगमंच के इतिहास पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि एकाध अपवाद को छोड़कर 18वीं शती तक वहाँ कोई नाटक ही नहीं था। 19वीं शती के अन्त में कुछ संस्कृत नाटकों के अनुवाद और रूपांतरण हुए और बीसवीं शताब्दी में शेक्सपियर के नाटकों के साहित्यिक नाटक और रंगमंच के विपरीत कन्नड़ की लोक-नाटक परम्परा (यक्षान) काफी समृद्ध रही है। 19वीं सदी में इन ग्रामीण नाटकों के घुमन्तू व्यावसायिक दल बन गए। इस लोकप्रिय रंगमंच के अलिखित नाटकों के बीच नन्दालिके नारप्पा के लिखित यक्षगानों का विशेष महत्त्व है। 1918 में टी.पी. केलाराम का पहला ऐसा नाटक प्रकाशित हुआ जो परम्परागत नाटकों से एकदम भिन्न आधुनिक समाज और उसकी समस्याओं से सम्बन्धित था। बीसवीं शती के तीसरे दशक में पद्य और गीति नाटकों की दृष्टि से के.एस. कारन्त तथा सामाजिक समस्याओं के चित्रण की दृष्टि से ए.एन. कृष्णराव के अतिरिक्त श्रीकण्ठय्य, गोविन्द पाई के.वी. पुटप्पा के नाम खास तौर से उल्लेखनीय हैं। सुप्रसिद्ध रचनाकार के शिवराम कारंत अपने संगीत एवं नृत्य नाटकों के कारण तथा आद्य रंगाचार्य अपने प्रयोगधर्मी आधुनिक नाटकों के कारण केवल कन्नड़ नाट्य-साहित्य के ही नहीं बल्कि भारतीय साहित्य के अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। 1968 में ‘कन्नड़ नाटक’ का एक संक्षिप्त लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए आद्य रंगाचार्य ने लेख के अन्त में लिखा था कि “हमारा नाटक अब इतनी प्रौढ़ता प्राप्त कर चुका है कि किसी महान् एवं मर्मस्पर्शी त्रासदियों के रचयिता का अभ्युदय हो।”<sup>1</sup> अतः यह महज संयोग नहीं है कि इसके ठीक बाद ही ‘ययाति’, ‘तुगलक’ और ‘हयवदन’ जैसे श्रेष्ठ नाटकों के रचयिता गिरीश कर्नाड का आगमन होता है। आज की नयी पीढ़ी के कन्नड़ नाटककारों में ‘क्रांति’, ‘परते’

<sup>1</sup> भारतीय नाट्य-साहित्य : सम्पादक-डॉ. नगेन्द्र, पृ. 447

और 'संक्रान्ति' के लेखक लंकेश तथा 'जो कुमार स्वामी' एवं 'ऋषिशृंगा' के लेखक चन्द्रशेखर कंबार के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

यूँ तो आधुनिक भारतीय नाटक और रंगमंच की लगभग सभी महत्वपूर्ण कृतियाँ किसी-न-किसी रूप में इतिहास या पुराण पर ही आश्रित हैं, किंतु 'तुगलक' का चरित्रांकन और रचना-विधान शेक्सपियर की महान् त्रासदियों तथा 'हेनरी-IV', 'कैलीगुला', 'लूथर', 'ए मैन फार आल सीजन्स', 'गैलीलियो', 'बैकेट' इत्यादि को टक्कर का नाटक होने का एहसास दिलाने के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में 'तुगलक' एक अत्यन्त संवेदनशील नाटक है और निस्संदेह आधुनिक भारतीय नाटक की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।<sup>1</sup>

व्यक्ति और शासक के रूप में 'तुगलक' का ऐतिहासिक चरित्र इतने अधिक विरोधाभासों, विडम्बनाओं और विसंगतियों से घिरा हुआ है कि किसी भी प्रतिभावान नाटककार के लिए एक रचनात्मक चुनौती बन सकता है। इसके प्रदर्शन और प्रकाशन के समय लगभग सभी विद्वानों ने एकमत से यह स्वीकार किया था कि निश्चय ही 'तुगलक' की रचना के पीछे 'कन्नड़ में ऐतिहासिक नाटकों का अभाव' ही एकमात्र कारण नहीं हो सकता। क्रान्तदर्शी-स्वप्नदृष्टा, कवि-हृदय आदर्शवादी, महान् व्यक्ति और सनकी, क्रूर-वहशी, निकम्मे-अव्यावहारिक तथा पागलपन के सीमान्तों में झूलते प्रकृति के इस अदभुत-सृजन के घोर नाटकीय चरित्र के सम्मोहन तथा उसके तीव्र घटनापूर्ण शासनकाल और स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनैतिक परिस्थितियों की किसी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष समानता ने भी उसे अपनी ओर आकर्षित किया होगा। इब्राहिम अल्काजी का विचार है कि "इस महान् शासक के बृहद आदर्शों, स्वप्नों और आकाश को छूने वाली आकांक्षाओं में, तदनन्तर उसके आमूल पराभव में उन्हें (कर्नाड को) भारतीय समसामयिक वस्तुस्थिति का बोध हुआ होगा।"<sup>2</sup> राजेन्द्र पाल इसके प्रदर्शन के प्रभाव की चर्चा करते हुए कहते हैं, "Its impact I recollect was quite tremendous—a new play by a relatively little-known playwright, and with such obvious parallels with a contemporary figure"<sup>3</sup> इसके कन्नड़ प्रदर्शन के समीक्षक चन्द्रशेखर के अनुसार इस, "नाटक की पंक्तियाँ और प्रसंग इतिहास से बाँधे हुए नहीं लगते, वे आज की राजनीति की घटनाओं और स्थितियों पर भी लागू हो जाते हैं।"<sup>4</sup> डॉ. सुरेश अवस्थी के शब्दों में, "'तुगलक' सम्भवतः किसी भी भारतीय भाषा में पिछली आधी शताब्दी में लिखे गए ऐतिहासिक नाटकों में पहला ऐसा नाटक है, जिसमें ऐतिहासिक कथा और पात्रों को उस बिन्दु तक 'अनैतिहासिक' बनाया गया है, जहाँ आकर उनकी समसामयिक अर्थवत्ता और सार्थकता मुखरित हो जाती है, और वह इस नयी चेतना के भारतीय नाटकों की प्रथम पंक्ति में आ जाता है।"<sup>5</sup> युवा नाटककार सरेन्द्र वर्मा को भी "'तुगलक' में भारतीय जन-जीवन के शाश्वत तथा चिरन्तन दुःख और स्वतन्त्र भारत के पहले प्रधानमंत्री के स्वप्न दृष्टा रूप की झलक"<sup>6</sup> दिखाई दी थी और स्वयं नाटककार गिरीश कर्नाड ने भी स्वीकार किया कि "I felt in the early

<sup>1</sup> नटरंग : 19 : पृ. 48

<sup>2</sup> आज के रंग नाटक : पृ. 21

<sup>3</sup> Enact : May 1972

<sup>4</sup> नटरंग 10-11 : पृ. 119

<sup>5</sup> आज के रंग नाटक : पृ. 32

<sup>6</sup> नटरंग : 12 : पृ. 62

sixties India had also come very far in the same direction—the twenty-year period seemed to me very much a striking parallel”.

परन्तु इन तमाम प्रामाणिक साक्ष्यों के बावजूद आज ‘तुगलक’ में मुझे न तो कोई स्पष्ट और विशेष समकालीन संदर्भ दिखाई देता है और न ही कोई समानान्तर प्रसंग। नेहरू के उद्भव और पराभव अथवा स्वतन्त्र एवं दृढ़ राष्ट्र की निर्माण कल्पनाओं-योजनाओं-नीतियों और उनकी असफलताओं के साथ ‘तुगलक’ की समानता करना बहुत दूर की कौड़ी लाना होगा। अपने आदर्शों और सपनों में प्रायः प्रत्येक बड़ा तथा लीक से हटा व्यक्ति द्वन्द्वग्रस्त और अकेला होता है और अपने तत्कालीन यथार्थ से बुरी तरह चिपके व्यक्तियों से उसे इसी तरह संघर्ष कर टूटना और हारना पड़ता है। इसलिए राजनीति के इस शाश्वत् सत्य के चित्रण की दृष्टि से ‘तुगलक’ जितना नेहरू और उनके शासनकाल की झलक प्रस्तुत करता है उतनी छाया तो हम उसमें किसी भी महान् व्यक्ति और उसके समय को भी देख सकते हैं। मेरे विचार से ‘तुगलक’ एक विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक है इसमें समकालीन परिदृश्य की झाँकी देखना विशद रूप से अपने ही कल्पना-लोक में विचरण करने के समान है। परन्तु इससे यह नाटक छोटा या कम महत्त्वपूर्ण नहीं हो जाता—क्योंकि अपने वक्त और परिवेश की टुच्ची सच्चाइयों से सीधा और गहरा रिश्ता न रखने, अपने ही सपनों और आदर्शों को चरम-सत्य मान लेने, सिद्धान्त और व्यवहार के अन्तर को न समझने तथा सामान्य-जन के स्वार्थ-लिप्त जीवन एवं मनोविज्ञान को न समझने वाले ‘व्यक्ति’ की महान् आकांक्षाओं और अपनी परिस्थितियों से लगातार लड़ते हुए उसके सम्पूर्ण पराभव तथा उसके उलझन भरे अन्तर्विरोधी व्यक्तित्व के सूक्ष्म गहन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और उसके प्रभावपूर्ण प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से ‘तुगलक’ एक अत्यन्त प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण नाटक है।

किसी भी कालजयी नाट्य-रचना के लिए विद्वानों ने विषय-वस्तु की विशालता और चरित्रांकन की महानता के साथ-साथ उसके वस्तु-विन्यास या संरचना-विधान के संतुलन एवं कसाव जैसी विशेषताओं का बार-बार उल्लेख किया है। अपने आदर्शों की स्थापना के लिए परिस्थितियों से आद्यन्त संघर्षरत तुगलक का चरित्र और विकास, न केवल पढ़ने/देखने में अत्यन्त नाटकीय तथा रोचक है बल्कि किसी भी महान् अभिनेता के समक्ष एक कठिन चुनौती उपस्थित करने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। सत्यदेव दुबे का यह कथन सही है कि “जहाँ आज के नाटकों में अच्छे अभिनेताओं को चुनौती भरी भूमिकाएँ मिल जाती हैं, वहाँ शम्भु मित्र जैसी प्रतिभावाने अभिनेता को पर्याप्त गहराई की तलाश के लिए केवल तुगलक की भूमिका दिखाई देगी।”<sup>1</sup>

‘तुगलक’ की कथावस्तु मुख्यतः इतिहासमिश्रित है जिसे दिलचस्प और नाटकीय बनाने के लिए रचनाकार ने कहीं-कहीं कल्पना का सहारा भी लिया है। मुहम्मद तुगलक के कुल छब्बीस वर्ष के शासन-काल में से सर्वाधिक घटनापूर्ण और रोमांचक लगभग सात वर्षों को यहाँ चुना गया है। अपने सपनों, आदर्शों और मजबूत इरादों में आसपास को छूने की तमन्ना लिये तुगलक के उत्साहपूर्ण व्यक्तित्व से लेकर अपने आप से और बाहरी ताकतों से लगातार लड़कर खूँखार, वहशी और सनकी सुल्तान बनकर एकदम टूटे, पराजित और अकेले तुगलक की त्रासद चरित्र तक की वैविध्यपूर्ण लम्बी यात्रा को कर्नाड ने पैंतीस-चालीस पात्रों तथा तेरह दृश्य और चार सूक्ष्म दृश्यों के माध्यम से व्यक्त किया है। श्रेष्ठ नाटक के

<sup>1</sup> धर्मयुग : 16 अप्रैल, 1972 : पृ. 31

संरचना-विधान के सम्बन्ध में हेनरी जेम्स का यह कथन लम्बा किन्तु विशेष ध्यान देने योग्य है—“वास्तव में उत्कृष्ट नाटक के सम्बन्ध में यह बात अच्छी होती है कि उसके लिए किसी भी अन्य साहित्यिक कृति की अपेक्षा अधिक कुशल संरचना की आवश्यकता होती है। उसे सुबद्ध रूप देने और संवारने की आवश्यकता होती है, और इस प्रक्रिया में कलाकार की दुर्लभ क्षमताओं का प्रयोग होता है। कथा को संयोजित और व्यवस्थित करना है। कुछ बातें जोड़नी हैं, कुछ छोड़नी हैं; बहुत ही सावधानी से जुड़ाई करने वाले का काम करना है; और अन्त में अपने सारे उपकरणों को ढक कर अपने रचित ढाँचे पर चिकना और चमकता हुआ मुलम्मा चढ़ाना है।...नाटक निश्चित आकार और अनम्य वस्तु के बने बक्से की भाँति है, जिसमें बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुओं को बन्द करके रखना है। रचना निपुणता की यह बड़ी भारी समस्या है और बड़ी ही रोचक समस्या है। वे बहुमूल्य वस्तुएँ बक्से के लिए अधिक जान पड़ती हैं; परन्तु कलाकार को यह विश्वास है कि धीरज और कुशलता से काम लेने पर प्रत्येक के लिए स्थान बन जाएगा और किसी को भी कुचलना, दबाना और क्षति पहुँचाना नहीं पड़ेगा। घटिया नाटककार या तो बक्स के किनारे तोड़ देता है या उन वस्तुओं को उलट-पुलट डालता है। सच्चा नाटककार घुटनों के बल बैठ कर अपनी वस्तुओं को ठीक से रखता है, भले ही झुँझला उठे, परन्तु धीरज नहीं छोड़ता और अन्त में बक्स को बिल्कुल ठीक-ठीक सजाकर विजयी होकर उठता है। बक्स बिल्कुल ठीक से बन्द हो जाता है, ताला भी लग जाता है, और एक से दूसरी वस्तु के बीच में चाकू धँसाने का भी स्थान नहीं रहता।” ‘तुगलक’ के पहले दृश्य में बुजुर्ग, जवान, मज़हबी, शरीफ़, हिन्दू, नकीब इत्यादि सामान्य एवं गौण पात्रों के माध्यम से तत्कालीन राजनैतिक सामाजिक परिस्थिति और नये सुल्तान तुगलक के भव्य किन्तु जनता द्वारा अग्राह्य चरित्र को उभारने के साथ-साथ नाटक में तुगलक के समानान्तर चलने वाले कुटिल अजीज के चरित्र को भी प्रस्तुत कर दिया गया है। नाटक के ‘आरम्भ’ और ‘उद्घाटन’ की दृष्टि से पहला दृश्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है और कर्नाड ने इसके संयोजन में सम्पूर्ण सफलता प्राप्त की है। नाटक के शुरू में ही हमें तुगलक के इतिहास (कि उसने अपने पिता और भाई की हत्या करवाई) उसके वर्तमान सुधारों, भावी योजनाओं और महान-आदर्शों की झलक मिल जाती है। सुल्तान की नमाज के वक्त की पाबन्दी तथा शेख साहब और सुल्तान के हमशक्ल होने की दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातों को भी लेखक ने यहाँ बहुत कुशलता और मासूमियत से पिरो दिया है; जिनका दिलचस्प और खासा नाटकीय इस्तेमाल बाद में नाट्य-विडम्बना के रूप में किया गया है। आजम और अजीज के संवादों से उनके चरित्र सम्बन्धी अपेक्षित जानकारी भी दे दी गई है और अजीज के चरित्र को रोचक और कुतूहलपूर्ण बनाये रखने के लिए उसका सम्पूर्ण उद्घाटन नाटक के अन्तिम दृश्य में किया गया है। अदालत के बाहरी हिस्से के इस दृश्य के बाद दूसरा दृश्य शाही महल का है जहाँ तुगलक की बौद्धिकता, कूटनीतिज्ञता, सम्वेदनशीलता, तार्किकता, आदर्शमयता और स्वप्नशीलता तथा उन्हें पूरा करने के बुलन्द इरादों का पता चलता है। यह पूरा दृश्य केन्द्रीय चरित्र के आन्तरिक दर्शन का दृश्य है। इसके साथ ही सूक्ष्म दृश्य से ढिंढोरची के द्वारा इमामुद्दीन के आगमन की घोषणा की गई है। तीसरा दृश्य मस्जिद के सेहन के सामने का है जहाँ तुगलक की सियासी चाल के आगे शेख हार जाते हैं और आईन-उल-मुल्क के साथ शान्ति/सन्धि-वार्ता करने के लिए तुगलक का दूत बनना स्वीकार कर लेते हैं। सूच्य दृश्य में पुनः ढिंढोरची द्वारा कन्नौज में आईन-उल-मुल्क की पराजय की

<sup>1</sup> नाटक साहित्य का अध्ययन : ब्रैंडर मैथ्यूज (अनुवाद : इन्दुजा अवस्थी) पृ. 96 से उद्धृत।

घोषणा की जाती है और शेख की सम्भावित हत्या के रहस्य को चौथे दृश्य के उत्तरार्द्ध के लिए बचा लिया जाता है। चौथा दृश्य महल के दूसरे कोने का है जिसमें शहाबुद्दीन और सौतेली माँ तथा बाद में तुगलक और रतनसिंह के संवादों से उपस्थित राजनैतिक स्थिति, शेख की मृत्यु तथा तुगलक के विरुद्ध षड्यन्त्र का संकेत मिलता है। पाँचवाँ दृश्य दिल्ली शहर की एक क़याम गाह का है जहाँ अमीर-उमरा, सैयद और इमाम रतनसिंह के माध्यम से शहाबुद्दीन को अपनी ओर मिलाकर नमाज के वक्त तुगलक की हत्या की साजिश करते हैं। छठा दृश्य फिर शाही महल का है। अत्यन्त नाटकीय ढंग से षड्यन्त्र विफल होता है और तुगलक द्वारा बेवफा शहाबुद्दीन की क्रूर हत्या कर दी जाती है। अन्य सब लोग गिरफ्तार होते हैं। यहीं से तुगलक के चरित्र में एक स्पष्ट परिवर्तन देखने को मिलता है। उसका मोह भंग होता है। वह मैत्री और सहयोग का रास्ता छोड़कर हत्या और सन्देह का मार्ग पकड़ लेता है। सूच्य दृश्य में ढिंढोचरी एक और दो के माध्यम से शहाबुद्दीन को शहीद बनाया जाता है, नमाज बन्द कर दी जाती है और दिल्लीवासियों को एक मास के अन्दर दौलताबाद पहुँचने का हुक्म दिया जाता है। सातवाँ दृश्य अन्तराल की तरह है और दिल्ली तथा दौलताबाद के रास्ते में घटित होता है। इसमें सुल्तान के कारिन्दे बने अजीज और आज़म को निर्दयता से धन बटोरते दिखाया गया है। आठवाँ दृश्य दौलताबाद के किले के ऊपरी हिस्से का है। चार साल गुज़र चुके हैं। पहले जवान पहरदार तथा बाद में बरनी और मुहम्मद की बातचीत से बिगड़ी हुई समकालीन परिस्थिति एवं तुगलक की मनःस्थिति और उसके बुलन्द मगर लगातार दम तोड़ते हुए ख्वाबों की टीस का पता चलता है। इसी दृश्य के अन्त में नजीब के खून की खबर भी मिलती है। नौवाँ दृश्य पहाड़ी गुफा का है जिसमें डाकू बने अजीज और आज़म खलीफ़ा खानदान के नुमाइंदे गियासुद्दीन अब्बासी को मार देते हैं। अजीज उसके कपड़े और अंगूठी पहनकर तथा इजाजत नामा लेकर स्वयं गियासुद्दीन की शक्ति में शाही महल की तरफ़ रवाना हो जाता है। दसवाँ दृश्य शाही महल में मुहम्मद की आरामगाह का है। सौतेली माँ तुगलक की नीतियों और असफलताओं की कटु आलोचना करती है। मुहम्मद नजीब के हत्यारे की तलाश में पागल हो रहा है तभी सौतेली माँ घबराकर नजीब की हत्या का अपराध स्वीकार कर लेती है। तुगलक उसे बीच बाजार में खम्भे से बाँध कर मार डालने का हुक्म देता है। प्रतिशोध, हत्या और खून-खराबे से घिरा तुगलक खुदा से रहम और रहनुमाई की दुआ माँगता है। तभी बरनी गियासुद्दीन अब्बाली के आगमन की सूचना देता है। सूक्ष्म दृश्य में ढिंढोरची जनता को खलीफ़ा खानदान के प्रतिनिधि के आने और पाँच साल से बन्द नमाज को पुनः चालू करने का सन्देश देता है। ग्यारहवें दृश्य में दौलताबाद के बन्द दरवाजे के बाहर सामान्य जनता द्वारा गरीबी, बेकारी, भुखमरी, अकाल का दहशतनाक बख़ान और तुगलक द्वारा गियासुद्दीन के शानदार स्वागत का चित्रण है। लोगों की दिलचस्पी अब नमाज से ज्यादा अनाज और दो वक्त की रोटी में है, मगर उनकी आवाज को चुप करा दिया जाता है। बारहवाँ दृश्य शाही महल के एक कोने का है जहाँ आज़म परिस्थितियों को देखते हुए अजीज को चुपचाप वहाँ से भाग चलने की राय देता है। अजीज इस खेल को अधूरा नहीं छोड़ना चाहता और आज़म घबराकर भाग जाता है। तेरहवाँ लम्बा और अन्तिम दृश्य महल का है। बरनी द्वारा माँ की मृत्यु के कारण सुल्तान से दरबार छोड़ कर चले जाने की इजाजत, आज़म की मौत की खबर और तुगलक द्वारा नाटकीय ढंग से अजीज का रहस्योद्घाटन, धोबी अजीज द्वारा सुल्तान मुहम्मद तुगलक से अपना समानता, अजीज को माफ़ी, बरनी का पलायन, नमाज फिर से प्रारम्भ और थके, टूटे, हारे मगर वहशी और खूँखार तुगलक के भयावह अकेलेपन के साथ नाटक समाप्त होता है।

‘तुगलक’ की कथावस्तु बहुत विस्तृत, विविधतामयी और फैलावपूर्ण है परन्तु उसका गठन उतना ही चुस्त, कसावपूर्ण और सन्तुलित है। प्रदर्शन की समय-सीमा को देखते हुए इसका सम्पादन जितना आवश्यक है उतना ही कठिन भी है। तुगलक के महान् इरादों और उसकी अभूतपूर्व योजनाओं के सैद्धान्तिक पक्ष के समानान्तर अजीज के व्यक्तिगत स्वार्थों और कुटिल कारगुजारियों से परिपूर्ण व्यावहारिक पक्ष का प्रस्तुतीकरण दिलचस्प और गहरी नाट्य-विडम्बना से भरा है। दृश्य-विधान के क्रम में रोचकता, विविधता और सौन्दर्य-बोध के दर्शन होते हैं। सुप्रसिद्ध अभिनेता-निर्देशक इब्राहिम अल्काजी ने ठीक ही कहा है कि इस, “नाटक का मुख्य कार्य-व्यापार निरन्तर दो स्तरों पर चलता है—दरबार का स्तर जहाँ कि बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाई जाती हैं और अजीज का स्तर, यहाँ यहीं योजनाएँ विफल की जाती हैं। इनके अतिरिक्त दृश्यस्थल दरबार से हटकर षड्यंत्र रचते हुए अमीर-उमरा, बेचैन, परेशान भीड़, कुटिल उपाय खोजते हुए अजीज और फिर वापस दरबार की ओर मुड़ पाता है। नाट्य-वेग में ढिलाई लाए बिना राजनीतिक और शासकीय प्रश्नों को नाट्य के कार्य के साथ सम्पृक्त किया गया है। विभिन्न दृश्यों का आकर्षण एक समान बना रहता है और बीच-बीच में दरबारी शानो-शौकत उन्हें राजकीय भव्यता भी प्रदान करती है।”<sup>1</sup> इसके रचना-विधान और स्थापत्य में अद्भुत तार्किकता, सुसम्बद्धता और सुन्दरता है। प्रत्येक दृश्य आगामी दृश्य के लिए आधार बनता है और संघर्षरत तुगलक के लिए नई-नई चनौतियों के द्वार खोलता है। प्रत्येक पात्र का प्रवेश-प्रस्थान, संवाद, कार्य-कलाप, मुद्रा, भंगिमा वगैरह सब कुछ जैसे कुशल शतरंज के खिलाड़ी के हाथों अपने सर्वाधिक उपयुक्त और प्रभावशाली स्थान पर रखे गए मोहरे की तरह हैं। इसका दृश्य-नियोजन गणितीय शुद्धता, सटीकता और उत्कृष्ट कारीगरी का अच्छा नमूना है। इसे विश्व के कालजयी नाटकों के रचना-विधान के समकक्ष रखा जा सकता है। इसके श्रेष्ठ वस्तु-संरचना कौशल के सम्बन्ध में एक रंग-समीक्षक का यह कथन उचित ही है कि—“Tughlaq is a beautifully structured play, the scenes so juxtaposed that you are not allowed to be either carried by your hatred towards Tughlaq for his Machiavellian macinations or by your sympathy or admiration for his idealism. Each scene is like a brick serving a particular role and helping is the total structure. One can even say that the crafting is so good that it appears self-conscious”<sup>2</sup> कार्य-व्यापार को आगे बढ़ाने के लिए कर्नाड ने ‘एक्सीलरेटर’ के साथ-साथ ‘ब्रेक’ का भी अत्यन्त सूझ-बूझ और कलात्मकता से इस्तेमाल किया है।

मंच पर पहली बार प्रवेश करने वाले पात्र के व्यक्तित्व, अन्य पात्रों से सम्बन्ध तथा इरादों की जानकारी या उसका संकेत अच्छा नाटककार अपने पाठक/दर्शक को पहले से दे देता है। इससे दर्शकों की रुचि उसके संवादों और क्रिया-कलापों के प्रति काफी बढ़ जाती है। इससे उन्हें नाटककार का हमराज होने का सुख और गौरव प्राप्त होता है। इस स्वर्णिम-नियम के पालन के साथ-साथ नाटकीयता और कुतूहल को भी बनाए रखना आसान काम नहीं है। परन्तु ‘तुगलक’ में इन दोनों बातों का सुन्दर सामंजस्य देखने को मिलता है। प्रत्येक नये पात्र की अपेक्षित जानकारी नाटककार हमें पहले से दे देता है। नमाज के वक्त की पाबन्दी शेख के हमशक्ल होने की बात तथा तुगलक के शतरंज-प्रेम जैसे तथ्यों का प्रयोग रचनाकार ने तनाव के निर्माण और चरम नाटकीय क्षणों की सृष्टि के लिए किया है। दसवें दृश्य के अन्त में तुगलक

<sup>1</sup> आज के रंग नाटक : पृ. 21-22

<sup>2</sup> Enact : May 1972 : Rajinder Paul



का प्रार्थना के लिए झुकना और ठीक उसी समय बरनी द्वारा गियासुद्दीन के आने की खबर इसका एक अन्य उदाहरण है। दूसरे दृश्य के अन्त में सौतेली माँ के संवाद में नजीब को खत्म कर देने का स्पष्ट संकेत है। फिर भी बाद में नजीब के कत्ल के रहस्य और उसके उद्घाटन में तनाव की जरा सी भी कमी नहीं आती। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि इसके कार्य-व्यापार संचालन में प्राकस्मिकता और संयोग का सहारा लगभग न के बराबर लिया गया है। सब कुछ सम्भाव्य और स्वाभाविक के बारीक धागे में पिरोया हुआ है। सभी महत्वपूर्ण घटनाएँ केन्द्रीय चरित्र की सचेत इच्छा और योजना के परिणामस्वरूप ही घटित होती हैं।

श्रेष्ठ नाटककार को इस बात की गहरी समझ होनी चाहिए कि नाटक के कौन से अंश दृश्यात्मकता एवं कार्य-व्यापार के द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं और कौन से अंशों की केवल सूचना भर दे देना पर्याप्त होगा। 'तुगलक' में चार सूच्य दृश्यों की योजना और अन्यत्र भी कई जगह मात्र संवादों के माध्यम से महत्वपूर्ण जानकारी देकर कथा को आगे बढ़ाया गया है। इस दृष्टि से नाटक का सातवाँ दृश्य ही एकमात्र ऐसा अंश है जिसे अनिवार्य नहीं कहा जा सकता।

जहाँ तक नाटक के अन्त के प्रति जिज्ञासा और कुतूहल का प्रश्न है—पहले ही दृश्य से आम लोगों के विचार और अजीब का व्यवहार देखकर हम यह अनुमान लगा लेते हैं कि तुगलक का क्या हथ्र होने वाला है? उसकी योजनाओं की विफलता तथा स्वयं मुहम्मद को सम्भावित पराजय के विषय में कोई शक नहीं रहता। फिर भी नाटक या मुहम्मद की अन्तिम परिणति के प्रति हम प्राद्यन्त उत्सुक बने रहते हैं। यह उत्सुकता वास्तव में तुगलक को विफलता और पराजय की उस प्रक्रिया के प्रति है जिसमें तुगलक और उसके विरोधी-तत्त्वों की सर्वश्रेष्ठ और सम्पूर्ण शारीरिक-मानसिक शक्तियाँ मानो अस्तित्व रक्षा की अन्तिम लड़ाई में संलग्न हैं। 'क्या' की अपेक्षा यहाँ हमारी जिज्ञासा 'कैसे' के प्रति अधिक है। और नाटककार को इस सूक्ष्म और कठिन प्रक्रिया के चित्रण में पूर्ण सफलता मिली है—नाटक के अन्त तक पाठक/दर्शक की जिज्ञासा का बने रहना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अन्ततः हम सुप्रसिद्ध नाट्य-समीक्षक नेमिचन्द्र जैन के इस निष्कर्ष से सहमत होते हुए कह सकते हैं कि "नाटक शब्द बहुल जरूर है और प्रदर्शन के लिए उसके संक्षेप की आवश्यकता होती है, पर उसमें दृश्यों के संयोजन में बाहरी और भीतरी कार्य-व्यापार की ऐसी बुनावट है जो उसे शिथिल नहीं होने देती।"

'तुगलक' की मंचीय-प्रस्तुति का महत्त्व और मूल्य अपने समकालीन अन्य अनेक नाटकों से इसलिए भिन्न और अधिक है; क्योंकि इसके प्रदर्शनों ने ही इसे राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया और पुस्तकाकार रूप में यह बहुत बाद में सामने आया। अपने पहले ही दौर में यह नाटक अल्काजी द्वारा उर्दू में, कारन्त द्वारा कन्नड़ में तथा देशपांडे और अलोक पद्मसी द्वारा क्रमशः मराठी और अंग्रेजी में प्रस्तुत कर दिया गया। और अब तक तो न मालूम यह नाटक कितने कल्पनाशील अभिनेताओं और प्रतिभावान निर्देशकों के लिए चुनौती और कसौटी सिद्ध हो चुका है। प्रत्येक नाटक का वास्तविक माध्यम रंगमंच और उसकी सफलता का असली प्रतिमान उसका प्रभावशाली मंचन ही है मास्टर्न ने इस प्रसंग में बहुत सही कहा है कि "...the true life of a play is on the stage, that those will read it best who have already seen it

<sup>1</sup> नटरंग : 19 : पृ. 48

performed, and that the printed text is a body without a soul”<sup>1</sup> अतः हम यहाँ मंची-प्रस्तुति की दृष्टि से भी ‘तुगलक’ के शरीर और उसकी आत्मा की परीक्षा भी कर लेना चाहते हैं। यूँ दिल्ली में ‘तुगलक’ का पहला प्रदर्शन राष्ट्रीय नाट्य-विद्यालय की ओर से अल्काजी की देख-रेख में ओम शिवपुरी ने किया था; परन्तु मैं यहाँ कुछ व्यक्तिगत कारणों से उस दूसरी प्रस्तुति का विलेखण कर रह हूँ जिसे इब्राहिम अल्काजी मुक्ताकाशी रंगमंच पर 1972 में प्रस्तुत किया था और बाद में 1974 में जिसे पुराने किले के विराट्मंच पर पुनः प्रदर्शित किया गया।

यहाँ प्रकाशित आलेख की मंचीय सम्भावनाओं और उसके वास्तविक मंचन को साथ-साथ देख लेना सम्भवतः अधिक रोचक एवं उपयोगी रहेगा। अपने मूल रूप में ‘तुगलक’ का आलेख लगभग चार-साढ़े घण्टे का लम्बा समय माँगता है, जबकि आज का दर्शक ढाई-तीन घण्टे से अधिक बैठना नहीं चाहता। इसलिए इसका उचित सम्पादन करना अति आवश्यक है। परन्तु इसका चुस्त और गठा हुआ रचना-विधान आसानी से काटने की छूट नहीं देता। अल्काजी द्वारा केवल सातवें दृश्य को छोड़कर और कोई दृश्य पूरी तरह काटा नहीं गया। जगह-जगह संवादों की पंक्तियों और कुछेक शब्दों को काट-छाँट कर आलेख को संक्षिप्त करने की कठिन कोशिश की गई।

सम्पूर्ण नाटक की रचना-शैली यथार्थवादी है। परन्तु लेखक द्वारा दिए गए दृश्य-बन्ध के प्रति संक्षिप्त निर्देश और दिल्ली तथा दौलताबाद के विविध कार्य-स्थलों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार ने मानो पारसी रंगमंच के लिपटवाँ पर्दों वाले मंच-विधान अथवा सांकेतिक दृश्य-बंध की कल्पना की होगी। पूर्वाद्ध में दूसरे और छठे दृश्य का कार्य-व्यापार एक ही स्थान ‘शाही महल’ में घटित होता है। इसी प्रकार उत्तराद्ध में दसवें और तेरहवें दृश्यों को भी खींचतान कर एक ही अभिनय-क्षेत्र दिया जा सकता है। शेष नौ दृश्यों के स्थान और दृश्य-बंध अलग-अलग हैं। (लगभग यही समस्या डॉ. धर्मवीर भारती के पद्य-नाटक ‘अंधायुग’ के मंचन के साथ भी जुड़ी हुई है।) इसलिए अल्काजी ने स्कूल के मुक्ताकाशी मंच ‘मेघदूत’ पर इसकी मंच-परिकल्पना में यथार्थ और सांकेतिकता के कल्पनाशील सामंजस्य का आश्रय ग्रहण किया। स्वयं उन्हीं के शब्दों में, प्रस्तुत नाटक विशद निरूपण के उपयुक्त तो है ही, वह मुख्यतः उसकी माँग भी करता है। अतएव दृश्य विधान की कल्पना ऐसी होनी चाहिए जो कार्य-व्यापार की व्याप्ति और शक्ति को बल प्रदान कर सके। सबसे पहले तो अग्रमंच का वह मुख्य कार्य-क्षेत्र है, जिसका भीड़ के दृश्यों और जुलूस के दृश्यों के लिए पूरा-पूरा इस्तेमाल होता है। पृष्ठमंच के दक्षिण में तुगलक का अध्ययन-कक्ष है। इसे सुरुचि से सजाया गया है। दीवार से दीवार तक फर्श बिछाया गया है। इसमें शाही तख्त और दो नीची भेजे हैं जिनमें से एक पर उनकी शतरंज बिछी है और दूसरी पर हरे कपड़े से ढकी कुराने पाक रखी है रहल पर। क़ारी (कुराने पाक की आयतें पढ़ने वाला) [क़ारी और कुछ दासियों-बांदियों की कल्पना स्वयं निर्देशक ने की थी।-लेखक] इसका इस्तेमाल करता है जिससे मैंने नाटक के दौरान उपयुक्त अवसरों पर आयतें पढ़ने वाले पात्र का काम लिया है। अध्ययन-कक्ष की पिछली दीवार पर कई ताख हैं जो किताबों, नक्शों, पाण्डुलिपियों और यन्त्रों से ठसाठस भरे हैं ताकि तुगलक की अध्ययनशील वैज्ञानिक और अन्वेषणप्रिय रुचि का संकेत मिल सके।”<sup>2</sup> अल्काजी की प्रस्तुति तुगलक में इस बौद्धिक और

<sup>1</sup> *Literature and Dramas* : Stanley Wells p. 41 से उद्धृत।

<sup>2</sup> 1, 2, 3, 4 तुगलक : निर्देशक का वक्तव्य।

विलक्षण गुण पर विशेष बल दिया गया। लेखक के 'शाही महल' के निर्देश को 'अध्ययन कक्ष' बनाने का यही प्रयोजन था। तुगलक के चरित्र की सम्पूर्ण निर्देशकीय व्याख्या की झलक हमें इस विराट् दृश्य-बंध के इस छोटे से हिस्से से मिल सकती है क्योंकि इसके निर्माण का "मूल अभिप्राय यह है कि एक ऐसे प्रतिभाशाली चरित्र का चित्रण हो जाए जो दूरदृष्टि में अपने समय से शताब्दियों आगे था और जिसका आधुनिक मन इस विशाल देश को एक राष्ट्र का रूप देने में लगा था, और जो इसी कारण अपने अमीर-उमराओं के संकीर्ण, सामन्तीय, क्षुद्र दृष्टिकोण को घृणा की दृष्टि से देखता था और कदम-कदम पर अपना धैर्य खो बैठता था क्योंकि उसकी यह आकांक्षा थी कि हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ मिलकर एक हो जाएँ। तुगलक की सारी विडम्बना यही है कि वह एक ऐसा दृष्टा था जिसके दृष्टिकोण की व्यापकता उसके समकालीनों के लिए अबूझ पहेली थी। जब तक तुगलक के चरित्र को यह आयाम न दिया जाए तब तक यह नाटक अर्थहीन रक्तपात और हिंसा का ही कांड बनकर रह जाएगा।" इस पक्ष की सजावट से तुगलक की अध्ययन-मनन शीलता के साथ-साथ धार्मिकता और शतरंज-प्रियता के मूल गुणों का भी रेखांकन हो जाता है।

तुगलक के अध्ययन-कक्ष के बाद और उसके ठीक पीछे की ओर इस प्रस्तुति का दूसरा महत्वपूर्ण भाग है—हरम—यानी सौतेली माँ का महल। "मंच के केन्द्र से एक लम्बा रास्ता इस तक पहुँचता है जहाँ एक विशालकाय दरवाजा है : इस दरवाजे की मेहराब, उस पर किया गया लिप्यंकन और अन्य मेहराबें—सब की सब तुगलककालीन वास्तुकला और प्रकल्पना की विशेषताओं पर आधारित हैं जिसके नमूने तुगलकाबाद में बनी गियासुद्दीन तुगलक की कब्र पर देखे जा सकते हैं।" नाटक में तीनों स्थानों पर सौतेली माँ का प्रवेश और प्रस्थान इसी दरवाजे से होता है।

अन्य अभिनय-स्थलों में उस चबूतरे का महत्वपूर्ण स्थान है जो पृष्ठकेन्द्र से एक चौड़े जीने द्वारा जुड़ा है और जिस पर एक ऊँची मेहराब है। यह मंच का सबसे ऊँचा स्तर है, और यह मेहराब मंच का सबसे प्रमुख आकार। पहले दृश्य में भीड़ को सम्बोधित करने के लिए और ग्यारहवें दृश्य में गियासुद्दीन के स्वागत के समय तुगलक इसी राह से पूरी शानो-शौकत के साथ मंच पर आता है। तुगलक के महत्त्व को प्रतिष्ठित करने के लिए उसे मंच के केन्द्र में सबसे ऊपर स्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त, "मंच की बाईं ओर से जो सीढ़ियाँ जाती हैं वे दो चबूतरों तक पहुँचती हैं। निचले चबूतरे से जंगल के खुले स्थान का काम लिया जाता है जब खलीफ़ा अजीज के हाथ पड़ जाता है। साथ ही वह अजीज के कक्ष का भी काम देता है जब वह खलीफ़ा के वेश में तुगलक के दरबार में आता है। ऊपरला चबूतरा षट्कोण की शकल का है जिसके पीछे ऊँचे-ऊँचे पेड़ हैं और अगल-बगल में जंगली घास छाई है। यह दौलताबाद के किले की सफील और कंगूरों का काम देता है जिसका सातवें दृश्य के रात वाले दृश्य में तुगलक इस्तेमाल करता है।" मंच की गहराई का दूरी और परिप्रेक्ष्य की स्थापना के लिए अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग इस प्रस्तुति में देखने को मिला।

1 तुगलक-निदेशक का वक्तव्य

2 वही

3 वही

तुगलक के महल की भव्यता शानो-शौकत, और उसके ऐश्वर्य को दिखाने के लिए पूरे मंच पर कीमती कालीन का प्रयोग किया गया। छोटे दृश्य के बाद मध्यान्तर रखने के कारण इसे हटाने की सुविधा भी सहज ही मिल गई। इससे दिल्ली के तड़क-भड़क पूर्ण वातावरण और दौलताबाद की उजाड़-बेरौनक दशा का वैषम्य और तुगलक के चरित्र में आ रहे बदलाव को भी स्थापित करने में मदद मिली। पात्रों की कीमती शाही-पोशाकों को मैला होने से बचाने में इससे अतिरिक्त मदद भी मिली।

वेश-भूषा और रूप-विन्यास में भी ऐतिहासिकता की प्रामाणिकता का पूरा ध्यान रखा गया। दरबार की रंग-व्यवस्था में फीरोजी, लाल, हरे और सुनहरे रंगों का प्रयोग किया गया। अमाल अल्लाना ने पात्रों की वेश-भूषा की परिकल्पना में पोशाकों के कटाव, छायाकृति और घेर का भी पूरा ध्यान रखा। नाटक में चार प्रमुख समूह हैं—1. भीड़, जो मिट्टी के रंगों में आती है—मुख्यतः भूरे और धूसर रंगों में; 2. अमीर-उमरा, जो भूरी और चटख गलाबी पोशाकों में एक सुसम्बद्ध समूह के रूप में तुगलक के विरुद्ध षड्यंत्र करते हैं। 3. दरबारी औरतें, जो पन्ना और सोने के रंग की पोशाकें, जड़ाऊ टोपियाँ और सलमा-सितारे की चुनरियाँ पहनती हैं। इस व्यवस्था का उद्देश्य है उनके नारी सुलभ आकर्षण पर बल देना और दरबार की मरदानगी से उनके वैषम्य को उजागर करना; 4. और तुगलक जो या तो काली और सुनहरी पोशाक पहनता है या सफेद और सुनहरी और दृश्य में शाही अन्दाज में औरों से अलग दिखाई देता है। इबादत के दृश्य में वह काली पोशाक पहनता है और सिर को काली और धूसर धारियों वाले रूमाल से ढकता है।...सिपाहियों को चमड़े के जिरह बख्तर, लोहे के नोकदार कनटोप, लोहे के छल्लों वाली चमड़े की पेटियाँ, बूट, तलवार और भाले दिये गये हैं। जंजीरों की खनखनाहट, तलवारों की झनझनाहट और चमड़े का वजन और भारीपन मिलकर एक ठोस फौजी समा बाँध देते हैं।”<sup>1</sup> एक रंग समीक्षक के विचार से, “Amal Allana's costumes are just breath-takingly beautiful. From the moment Tughlaq appears for the first time in Khartoum-like headgear to the last dejected moment of recognised failure, one sees him in regal splendour”<sup>2</sup> ऐतिहासिकता के इस सधन और तीव्र प्रभाव के पैदा करने में इन्दु घोष की सटीक और सुन्दर रूप-सज्जा का योगदान भी कम नहीं था।

जी.एन. दासगुप्ता की प्रकाश-व्यवस्था भी नाटक के परिवेश और मूड के अनुरूप प्रभावशाली रही। दृश्य और चरित्र की अपेक्षा के अनुसार प्रकाश-योजना को कभी यथार्थवादी रखा गया और कभी उसका उपयोग रीतिबद्ध ढंग से किया गया। तीसरे-चौथे दृश्यों में प्रकाश को नीचे से ऊपर की ओर डालकर मेहराबों और अभिनेताओं के विरूप छायाएँ पैदा की गईं जिससे षड्यन्त्र और उत्तेजना के वातावरण का निर्माण हुआ। शहाबुद्दीन की हत्या तथा उग्र भीड़ के दृश्यों में लाल रंग के द्वारा हत्या और हिंसा की अभिव्यक्ति की गई। ‘अन्तिम दृश्य में बरनी के चले जाने के बाद एक बत्ती द्वारा फर्श की बनावट के परिप्रेक्ष्य में तुगलक और उसकी नमाज की चटाई तथा लोटे पर प्रकाश डाला गया ये ही उसके एकमात्र संगी बचे हैं। फिर प्रकाश में धीरे-धीरे परिवर्तन करके, कभी पीछे से तुगलक पर प्रकाश डालकर, कभी नीली गगनिका पर दृश्य-बंध की छायाएँ प्रेक्षित करके, तुगलक के अन्तः संघर्ष और उसके विक्षुब्ध, बेचैन और विकृत मन को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया।’<sup>3</sup> पुराने किले के दृश्य-बंध की गहराई और

<sup>1</sup> वही : पृ. 39-40

<sup>2</sup> Enact : May 1972

<sup>3</sup> नटरंग 6 : पृ. 59-60 (गैबोनाथ दासगुप्ता)

अंधेरी काली मेहराबों के साथ कल्पनापूर्ण आलोक-व्यवस्था की आँख-मिचौनी ने नाटकीय कार्य-व्यापार को और भी सघन एवं प्रभावी बना दिया।

अल्काजी की संगीत-योगना 'तुगलक' के प्रभाव को प्रतिष्ठित करने और गहराई में विशेष सहायक सिद्ध हुई। उन्होंने अपने संगीत के लिए पारम्परिक तुर्की और फारसी संगीत के टुकड़ों का इस्तेमाल किया। स्वयं उन्हीं के शब्दों में, 'प्रमुख रूप से इनकी तीन कोटियाँ हैं : 1. दरबारी समारोह और जुलूस का संगीत; 2. खुद तुगलक के लिए वस्तुगीत जिनमें दृश्य-विशेष के वातावरण और मनःस्थिति के अनुकूल काफी रद्दोबदल होता रहता है; और 3. स्थिति के अनुसार कुरान की आयतों का पाठ। यह पाठ एक मिसरी क़ारी ने किया जिन्हें इस समय दुनिया का सबसे उत्कृष्ट क़ारी माना जाता है।'<sup>1</sup> निःसन्देह कुराने पाक की आयतों का यह पाठ दर्शक के मन में बहुत देर तक अनुगूँज पैदा करता रहता है और तुगलक के अकेलेपन, उसकी धार्मिक महत्त्वाकांक्षा, असफलता की करुण हूक और सब कुछ के अकेले ईश्वरीय साक्षी को रेखांकित करता है।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं तुगलक का चरित्र अत्यन्त संवेदनशील, क्रूर, बौद्धिक, अव्यावहारिक और अनेक विरोधों से संयुक्त होने के कारण एक जटिल और कठिन चरित्र है। तुगलक की भूमिका किसी भी बड़े कलाकार के लिए एक चुनौती प्रस्तुत करती है। पहले ओम शिवपुरी ने इस चुनौती को स्वीकार करके तुगलक को एक टूटते हुए त्रासदीय चरित्र के रूप में सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया था तो इस बार मनोहर सिंह ने भी इस चुनौती को उसी विश्वास तथा साहस के साथ स्वीकारा तथा तुगलक के अकेलेपन की पीड़ा और निस्संगता को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया। "इस प्रस्तुति में मनोहर सिंह ने तुगलक के अलग-अलग रूपों और मनःस्थितियों का उतार-चढ़ाव खूबी और समझ से दिखाया। विशेषकर अन्त में प्रभावहीन, उदास व्यक्ति के रूप में तुगलक का रूपायन बड़ा संवेदनशील था। उत्तरा बावकर की सौतेली माँ में अन्त की लाचारी और दयनीयता बड़ी तीव्रता से मूर्त हुई, यद्यपि वे उसकी राजनैतिक कूट बुद्धि और शक्ति के तीखेपन को नहीं उभार पाई। नादिरा जहीर<sup>2</sup> के अभिनय में यह पक्ष ज्यादा सफाई से प्रकट हुआ। ओम शिवपुरी के बरनी में अव्यावहारिक बुद्धिजीवी की असहायता भी किसी हद तक प्रकट हो सकी। मगर राजेन्द्र जसपाल अजीज की बेधड़क धूर्तता को बारीकी से नहीं दिखा सके और उनका अभिनय ऊपरी ही अधिक रहा। यही बात तीरथराम के नजीब में भी थी, जो प्रभावी तो था पर दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ नहीं लगता था।"<sup>3</sup> अन्य भूमिकाओं में नसीरुद्दीन शाह (आजम), शरद् व्यास (शहाबुद्दीन), भानु भारतीय (शेख इमामुद्दीन), सुनील कुमार (रतन सिंह), राजेश विवेक (गियासुद्दीन), बंसी कौल (शेख शम्शुद्दीन) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कुल मिलाकर अभिनय का स्तर अच्छा था और कलाकारों ने अपनी-अपनी भूमिकाओं को असरदार और कुशलतापूर्ण ढंग से पेश करने की सराहनीय कोशिश की। पुराना किला की प्रस्तुति में मुख्य भूमिका में मनोहर सिंह तथा उत्तरा घावकर को छोड़ कर शेष कलाकार नये थे। इसमें राजेश विवेक (नजीब), रंजीत कपूर (बरनी), पंकज कपूर (अजीज), विजय कश्यप (आजम), के.के. रैना (शिहाबुद्दीन) इत्यादि अभिनेताओं ने भाग लिया था। परन्तु कुल मिलाकर इसका समग्र प्रभाव पहले

<sup>1</sup> आज के रंग नाटक : पृ. 40

<sup>2</sup> सौतेली माँ की ही भूमिका करने वाली दूसरी अभिनेत्री।

<sup>3</sup> नटरंग : 16, पृ. 46 (नेमिचन्द्र जैन)

वाले प्रदर्शन के मुकाबले कमजोर रहा। कई स्थानों पर संवाद अनसुने रह गए और कई जगह अभिनेता अपनी संवाद-प्रस्तुति में लड़खड़ा गए। एक समीक्षक को लगा जैसा इस प्रस्तुति में “... in fact, the drama disintegrates into a succession of beautiful still portraits” तथा “Whereas the apparent conflict was relevantly exposed in the production, the internal anguish of Tughlaq was absorbed by the rocks and space before it could reach the audience in the amphitheatre.”<sup>1</sup> यहाँ गतियों और समूहनों में भी शिथिलता दिखाई दी, जबकि ‘मेघदूत’ वाली प्रस्तुति में ऐसा प्रतीत होता था कि “पूरे प्रदर्शन में परिवेश के फैलाव के कारण सघनता तो कम है पर सजीवता कहीं अधिक है, और दृश्यता को बड़े कारगर ढंग से इस्तेमाल किया गया है। समूहन बड़े और असरदार हैं और प्रवेश-प्रस्थान बड़े कुशल तथा रंगीन। लड़ाई, हत्या अथवा भीड़ के दृश्य बड़ी सफाई और सूक्ष्मता से प्रस्तुत हुए हैं क्योंकि वे नाटक के कथ्य से अधिक सार्थक ढंग से जड़े हैं।”<sup>2</sup> तुगलक और सौतेली माँ, तुगलक और जवान पहरेदार तथा बरनी एवं शहाबुद्दीन की हत्या तथा अजीज के रहस्योद्घाटन के दृश्य अत्यन्त मार्मिक, नाटकीय, तनावपूर्ण और सर्वाधिक प्रभावशाली थे। स्वयं मनोहर सिंह ने इन पंक्तियों के लेखक के साथ बातचीत में यह स्वीकार किया कि तुगलक की भूमिका उनके लिए एक कठिन और चुनौतीपूर्ण भूमिका थी और उसे करने के बाद उन्हें काफी सन्तोष मिला। गिरीश कर्नाड के कन्नड़ नाटक ‘तुगलक’ के ब.व. कारंत कृत उर्दू अनुवाद की इब्राहिम अल्काजी द्वारा निर्देशित राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की यह प्रस्तुति न केवल विद्यालय और दिल्ली रंगमंच की बल्कि सम्पूर्ण हिन्दी और भारतीय रंगमंच की एक उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

### बातचीत

**‘तुगलक’ की प्रस्तुति के सम्बन्ध में श्री मनोहर सिंह और जयदेव तनेजा की बातचीत के कुछ प्रासंगिक अंश।**

- प्रश्न—** प्रोडक्शन के लिए ‘तुगलक’ को पहली बार पढ़ने के बाद आपकी तात्कालिक प्रतिक्रिया क्या थी?  
**उत्तर—** यही कि वह एक बड़ा और महत्वपूर्ण नाटक है—शेक्सपियर के महान् नाटकों के स्तर का नाटक।  
**प्रश्न—** क्यों? किस दृष्टि से आप ऐसा मानते हैं?  
**उत्तर—** ‘तुगलक’ के चरित्र को नाटककार ने जिस प्रकार प्रत्येक दृश्य और पात्र के माध्यम से लगातार ‘बिल्ड-अप’ किया है और वस्तु-संरचना में जैसे ईंट पर ईंट रखते हुए पूरे कौशल से उसकी खूबसूरत इमारत को उसने खड़ा किया है—वह सचमुच अद्भुत है।  
**प्रश्न—** अभिनेता की हैसियत से ‘तुगलक’ में आपको क्या चुनौती दिखाई दी?  
**उत्तर—** वह एक बड़ा और जटिल चरित्र है। एक ओर इतना सॉफ्ट, टेंडर और आइडियलिस्टिक है—जब वह अपने अकेलेपन की बात करता है या पढ़ने-लिखने और भविष्य के सपनों की बातें करता है, और इसके ठीक विपरीत वही चरित्र दूसरी ओर पशु के धरातल पर उतर कर वहशी बना कत्ल-पर-कत्ल किए चला जाता है। इसी तरह और भी कई आयाम और रूप हैं इसके चरित्र

<sup>1</sup> *The Hindustan Times* : 22-4-74 (Kavita Nagpal)

<sup>2</sup> *नटरंग* : 19 : पृ. 48-49 (नेमिचन्द्र जैन)

के—जो किसी भी अभिनेता के लिए चुनौती हो सकते हैं। किसी भी दृष्टि से तुगलक कोई आसान चरित्र नहीं है।

**प्रश्न—** इसके रंग-शिल्प की कोई खास विशेषता?

उत्तर— तुगलक और अजीज के चरित्रों का विकास। वह एक-दूसरे के विरोधी भी हैं और एक-दूसरे के अक्स भी। और दोनों की आयरनी को अन्त तक खूब निभाया गया है। तुगलक की चुनौतियों और दिक्कतों का स्वरूप और स्तर भी क्रमशः बढ़ाया गया है और उसी के अनुरूप उसका चरित्र भी लगातार चरम की ओर बढ़ता जाता है। बरनी और नजीब के चरित्रों का इस्तेमाल भी बहुत खूबसूरत ढंग से किया गया है।

**प्रश्न—** प्रस्तुति के लिए आलेख का सम्पादन किस दृष्टि से किया गया?

उत्तर— पूरा दृश्य तो शायद एक ही काटा गया था—लेकिन बाकी कई लम्बे दृश्यों के शिथिल या अत्यधिक शाब्दिक हिस्सों को काट दिया गया था। उस सम्पादित आलेख में कहीं एक लम्हे (क्षण) के लिए भी आपको कोई झोल या कमजोरी नजर नहीं आएगी। समय को कम करने के लिए भी ये काट-छाँट नियाहत जरूरी थी।

**प्रश्न—** तुगलक और सौतेली माँ के सम्बन्धों के विषय में आपकी क्या राय है? ओम शिवपुरी वाली प्रस्तुति में एक स्थान पर तुगलक माँ की जाँध पर सिर रख कर सोता है, शायद—जबकि आलेख में मुझे इस तरह का कोई विशेष संकेत दिखाई नहीं देता।

उत्तर— कुछ लोग शायद इस सम्बन्ध में कोई मनोवैज्ञानिक काम्प्लैक्स देखें और इसे किसी रामेंटिक स्तर का सम्बन्ध स्वीकार करें। मगर मुझे ऐसा नहीं लगता और न ही हमारे प्रोडक्शन में ऐसी कोई बात थी। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यदि आप देखें तो तुगलक नपुंसक था और इसी कारण उसे स्त्री का संसर्ग असह्य लगता था। वह औरत का बच्चा पैदा करना बरदाश्त नहीं कर सकता था और व्यभिचार के तो वह इतना खिलाफ था कि उसने अपनी माँ को इसी जुर्म में मरवा दिया था। कर्नाड ने नाटक में इसे इस रूप में नहीं लिया है। मगर फिर भी नाटक को पढ़कर मुझे ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता कि उनमें किसी तरह के अनैतिक या अवांछनीय सम्बन्ध थे। हाँ, ओम शिवपुरी के प्रोडक्शन में ऐसा कुछ संकेत जरूर दिया गया था।

**प्रश्न—** लेकिन आप ही के निर्देशक अल्काजी साहब ने यह स्वीकार किया है कि सौतेली माँ तुगलक में अनुरक्त थी और इसी इरादे से वह उसके शयनकक्ष में भी जाती है।

उत्तर— सम्भव है कि यह बात माँ के मन में हो या उसकी तरफ से हो, मगर मुझे नहीं लगता कि तुगलक के मन में ऐसी कोई बात है—वह उसे अपने साथ सोने की इजाजत कभी नहीं दे सकता। और शायद यही वजह है कि वह तुगलक से बहुत चिढ़ती भी है। वह उस पर पूरा काबू पाना चाहती है और जब नहीं पा सकती तो नजीब को अपना प्रतिद्वन्दी मानकर उसे रास्ते से हटा देती हैं शयन कक्ष में उसका जाना ही उनके अनैतिक सम्बन्धों का प्रमाण नहीं है। अगर कहीं ऐसी बात होती तो नाटककार ने कहीं-न-कहीं उसका कोई संकेत अवश्य दिया होता।

**प्रश्न—** तुगलक की भूमिका में सबसे कठिन प्रसंग आपको कौन से लगे और क्यों?

उत्तर— दूसरे दृश्य में सौतेली माँ के साथ बातचीत में रात भर जागते रहने का प्रसंग और आठवें दृश्य में जवान पहरेदार के साथ का प्रसंग—बहुत ही अन्तर्मुखी और काव्यात्मक सीन हैं। इससे भी ज्यादा छोटे दृश्य में शहाबुद्दीन के कत्ल का प्रसंग बहुत ही नाजुक, नाटकीय और तनावपूर्ण प्रसंग था—उसमें जरा सी कमजोरी सारे प्रसंग को हास्यास्पद बना सकती थी—इसीलिए, जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, वह प्रसंग मुझे नाटक का सबसे कठिन प्रसंग लगा था।

### सहायक पाठ्य-सामग्री

1. भारतीय नाट्य-साहित्य : सं. डॉ. नगेन्द्र, एस. चंद एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली
2. नाटक साहित्य का अध्ययन : ब्रेंडर मैथ्यूज (हिन्दी अनुवाद : इंदुजा अवस्थी), आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6
3. आज के रंग-नाटक : सं. इब्राहिम अल्काजी, पु.ल. देशपांडे, सुरेश अवस्थी, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-6
4. नटरंग : सम्पादक-नेमिचन्द्र जैन (आई 47, जंगपुरा ऐक्सटेंशन, नई दिल्ली-14) अंक-6, 10-11 12, 16
5. इनैक्ट : सम्पादक-राजेन्द्र पाल (बी-258, नारायणा, फेज 1, नई दिल्ली-28, अंक : मई 1972)
6. धर्मयुग : 16 अप्रैल, 1972
7. लिटरेचर एण्ड ड्रामा : स्टेनले वल्स : राउटलैज एण्ड केगन पाल लि. ब्राडवे हाउस, 68-72, कार्टर लेन, लंदन

### मुहम्मद तुगलक सम्बन्धी इतिहास-ग्रन्थ

1. द काम्परीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया : द देहली सल्तनत : एम. हबीब एवं केखु निजामी।
2. तुगलककालीन भारत : डॉ. एस. अब्बास रिजवी
3. तुगलक डाइनेस्टी : डॉ. मेहदी हसन
4. हिस्ट्री ऑफ द करौना टर्क्स : डॉ. ईश्वरी प्रसाद

### संभावित प्रश्न

1. क्या तुगलक का चित्रण एक त्रासद-नायक के अनुरूप हुआ है?
2. 'अजीज तुगलक का ही विद्रूप है' क्या आप इससे सहमत हैं?
3. क्या 'तुगलक' में इतिहास और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य देखने को मिलता है? अपना मत व्यक्त कीजिए।
4. 'तुगलक' की नाट्य-विडम्बना पर प्रकाश डालिए।
5. 'तुगलक' की समसामयिकता और आधुनिकता के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त कीजिए।
6. 'तुगलक' नाटक की मंचीय प्रस्तुति की संभावनाओं पर प्रकाश डालिए।
7. 'तुगलक' नाटक एक श्रेष्ठ त्रासदी क्यों है, विवेचन कीजिए।



## स्कन्दगुप्त (जयशंकर प्रसाद)

डॉ. रमेश कुमारी खनेजा  
रीडर, हिन्दी विभाग,  
मुक्त शिक्षा विद्यालय  
दिल्ली विश्वविद्यालय

### (क) 'स्कन्दगुप्त' की नाट्यकला

अन्तर्वस्तु तथा अनुभूति के बहिरंग कलात्मक विन्यास को ही शिल्प कहते हैं। अनुभूति को सम्प्रेष्य बनाने के लिए कृतिकार अभिव्यक्ति के जिन विभिन्न साधनों का विनियोग करता है, उन सबके कलात्मक सौन्दर्य का संश्लिष्ट विश्लेषण ही शिल्प के अन्तर्गत आता है। किसी भी रचना का शिल्प बहुत कुछ उसकी अन्तर्वस्तु पर ही निर्भर करता है। स्वयं 'प्रसाद' ने "काव्य ओर कला का तथा अन्य निबन्ध" में इस बात को स्वीकारा है कि शिल्पगत व्यंजना 'अनुभूतिमयी प्रतिभा का स्वयं परिणाम' है और "जहाँ आत्मानुभूति की प्रधानता होगी, वहीं अभिव्यक्ति अपने में पूर्ण होती है।" प्रसाद की यह मान्यता उसके नाट्य-शिल्प के निर्धारण में भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अतः उनके व्यक्तित्व, जीवन-दृष्टि और अनुभूत संसार सभी ने उनके नाट्य-शिल्प को निश्चित स्वरूप दिया है।

नाट्य-शिल्प की कतिपय अपनी विशेषताएँ होती हैं जिनका परिचय हमें कृति के वस्तु-विन्यास, पात्रसृष्टि एवं चरित्र-चित्रण, कथोपकथन की भाषा-शैली, रस-योजना, रंग-शिल्प तथा अभिनय के कलात्मक सौंदर्य का माध्यम से प्राप्त हो सकता है। नाटक की इन विशेषताओं अर्थात् तत्त्वों के विषय में पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विद्वानों का दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न रहा है। अतः 'स्कन्दगुप्त' का विवेचन करने से पूर्व इस पर संक्षेप में विचार कर लेना समीचीन होगा। धनंजय के 'दशरूपक' नामक ग्रन्थ की इस उक्ति के अनुसार 'वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः' संस्कृत साहित्य में नाटक के तीन आधारभूत तत्त्व माने गए हैं। भारतीय आचार्यों ने नाटक को दृश्य-काव्य की संज्ञा देकर उसकी अभिनेयता को तो स्वयं सिद्ध ही मान लिया है। उन्होंने वस्तु का सर्वप्रथम कथन कर उसके महत्व को स्वीकार किया है। यदि रस नाटक की आत्मा है तो कथा-वस्तु उसकी देह अवश्य है।

भारतीय नाट्य-कला के कुछ विशेष सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर भारतीय आचार्यों ने अपने नाटकों की रचना की है। 'साहित्य-दर्पण' में विश्वनाथ ने लिखा है कि नाटक की वस्तु प्रख्यात होनी चाहिए। वस्तु के विभाजन व नियोजन के विषय में कहा है कि पाँच संधियाँ-मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्ष और निर्वहण-हों और पाँच से दस तक अंक हों। नाटक का नायक एक ऐसा व्यक्ति हो जो प्रख्यात वंश की धीरोदात्त, वीर्यवान, गुणवान और प्रतापवान हो। प्रधान रस शृंगार अथवा वीर हो पर निर्वहण-संधि में अद्भुत रस होना चाहिए। कार्य-व्यापार की सिद्धि के लिए चार-पाँच मुख्यतः चेष्टाशील रहें और नाटक के अंक

उत्तरोत्तर गोपुच्छग्र की भाँति छोटे होते जाएँ।' इस प्रकार संस्कृत आचार्यों के अनुसार नाटक के तीन प्रमुख तत्त्व हैं—कथावस्तु, नेता या पात्र और रस।

पाश्चात्य नाट्य-सिद्धान्त अरस्तु की नाट्य-कला सम्बन्धी मान्यताओं पर ही मूलतः विकसित हुआ है। अरस्तु ने समस्त काव्य के अनुकरण मात्र (मीमीसिस) कहा है। डॉ. नगेन्द्र ने अरस्तु के 'अनुकरण' की व्याख्या 'भाव कल्पनात्मक पुनः सृजनः' की है। अरस्तु ने ट्रेजेडी व कामेडी दो नाट्य-रूप माने हैं। उन्होंने त्रासदी की परिभाषा देते हुए उसके तत्त्वों का विवेचन इस प्रकार किया है—'त्रासदी किसी गम्भीर, स्वतःपूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है, जिसका माध्यम नाटक के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रयुक्त सभी प्रकार के करुणा तथा त्रास से उद्रेक हुए इन मनोविकारों का उचित विवेचन किया जाता है।...'त्रासदीय अनुकृति' शब्द में यह निहित है कि रंग विधान त्रासदी का अंग होगा। इसके बाद गीत और पदावली का स्थान होगा क्योंकि ये अनुकरण के माध्यम हैं। 'पदावली' से अभिप्राय शब्दों के छन्दोबद्ध विन्यासमात्र से है, 'गीत' शब्द का अर्थ सभी के लिए सुबोध है। ...त्रासदी किसी कार्य विशेष की अनुकृति होती है और कार्य के लिए अभिकर्ता व्यक्तियों का होना आवश्यक है जिनमें निश्चय ही चारित्र्य और विचार की कुछ विशेषताएँ होती हैं, क्योंकि उन्हीं से तो हम कार्य-व्यापार का विश्लेषण करते हैं। ये ही दोनों चारित्र्य तथा विचार—वे स्वाभाविक कारण हैं जिनसे कार्य उद्भूत होते हैं और इन्हीं पर सम्पूर्ण सफलता-विफलता निर्भर होती है। इस प्रकार कथानक कार्य-व्यापार की अनुकृति है क्योंकि कथानक से यहाँ मेरा तात्पर्य घटनाओं के विन्यास से है। चारित्र्य वह है जिसके बल पर हम अभिकर्ताओं के कुछ गुणों का अध्यारोप करते हैं। विचार की आवश्यकता तब पड़ती है जब किसी वक्तव्य को सिद्ध किया जाता है या किसी सामान्य सत्य का आख्यान किया जाता है।' इस प्रकार अरस्तु ने नाटक के कथानक (Plot), चरित्र (Characters), भाषा (Diction), अभिनय या दृश्य-विधान (Spectacle), विचार (Thought) और संगीत (Melody) नामक छः तत्त्व माने हैं।

अरस्तु के उपयुक्त मत का हमारे यहाँ भी कुछ अर्वाचीन आलोचकों ने समर्थन किया है किन्तु कई समीक्षकों ने भिन्न मत भी व्यक्त किया है। डॉ. सोमनाथ गुप्त ने 'साहित्य सन्देश' के मार्च 1957 में प्रकाशित 'नाटक' विषयक 'हमारी मान्यताएँ' शीर्षक लेख के अन्तर्गत नाटक के तीन तत्त्व ही माने हैं— (1) कथावस्तु, (2) पात्र और (3) रस। डॉ. भगीरथ मिश्र ने नाटक के केवल चार तत्त्व मानते हुए कहा है—'भारतीय दृष्टि से विवेचित चार अंगों—कथावस्तु, पात्र, रस और अभिनय से सभी का अंशतः समावेश

<sup>1</sup> नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पंचसंधिसमन्वितम्।  
 विलासधैर्यादिगुण वद्युक्तं नानाविभूतिभिः॥  
 सुखदुःखसमुद्भूति नाना रसनिरन्तरम्।  
 पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तितो॥  
 प्रख्यातवंशो राजविर्षधीरोदात्तः प्रतापवान्।  
 दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः।  
 एक एव भवेदगीं शृंगारो वीर एव वा।  
 अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽश्रुतः॥  
 चत्वारः पंच व मुख्याः कार्य व्यापृतपूरुषाः।  
 गोपुच्छग्र-समाग्रन्तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्॥ (साहित्य-दर्पण, 6-11)

हो जाता है। प्रथम दो तो सभी में हैं ही। अभिनय में सम्मिलित है। उद्देश्य और विचार भारतीय दृष्टि से रस के अन्तर्गत आ जाते हैं और जिसके अनुसार रस ही नाटक या रूपक का मूल प्रतिपाद्य है। ऐसी दशा में कई अलग तत्त्व मूलतः बच नहीं पाता। डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान ने भी अपनी समीक्षक कृति 'हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा' में नाटक के तीन ही तत्त्व प्रतिपादित किये हैं—(1) कथावस्तु, (2) संवाद, (3) दृश्य विधान। उनका मत है कि 'पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित और हिन्दी आलोचकों द्वारा स्वीकृत नाटक के छः तत्त्व कथा, संवाद, चरित्र-चित्रण, देश-काल, भाषा शैली और सामान्य उद्देश्य ऐसे तत्त्व हैं, जो उपन्यास और कहानी के भी तत्त्व माने जाते हैं। तो इनमें भेद ही क्या रहा? वे आधारभूत तत्त्व क्या हैं, जो नाटक को कहानी और उपन्यास से पृथक् करते हैं? प्रायः अनेक कहानियों का नाट्य-रूपान्तर किया जाता है, तो कौन-सी ऐसी विशेष बात कही जाती है, जिससे कहानी नाटक बन जाती है। हमारी सम्मति से वह आधार है—कहानी को संवादों और दृश्य-विधानों के रूप में प्रस्तुत करना। कोई भी कहानी साधारण हेर-फेर कर संवादों और दृश्य-विधानों के रूप प्रस्तुत किए जाने पर नाटक का कलेवर धारण कर लेती है।

प्रसाद ने स्वयं भी 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में भारतीय और पाश्चात्य नाट्य-तत्त्वों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं। प्रसाद जी पाश्चात्य नाट्य-शास्त्रियों की नाटक विषयक विरोध भावना को भारतीय दृष्टि के प्रतिकूल मानकर समस्त भारतीय चिन्तन को आनन्दवादी धारा जिसका प्रतीक इन्द्र था और दुःखवादी धारा जिसका प्रतीक वरुण था नामक दो धाराओं में विभक्त मानते हैं। प्रसाद जी का कहना है—भारतीय वाङ्मय में नाटकों की ही सबसे पहले काव्य कहा गया है—'काव्य तावन्मुख्यतो दशरूपात्मकमेव' (अभिनव गुप्त)। शैवागमों के 'क्रीडात्मेनाखिलम् जगत्' वाले सिद्धान्त का नाट्य शास्त्र में व्यावहारिक प्रयोग है। इसके साथ ही प्रसाद जी ने सामाजिक कारणों द्वारा उत्पन्न हुई पाश्चात्य जगत् के दुःखपूर्ण एवं संघर्षमय जीवन और कार्यों के आनन्द-प्रधान जीवन की ओर संकेत करते हुए लिखा है—'वर्तमान काल में नाटकों के विषयों के चुनाव में मतभेद है। कथावस्तु को भिन्न प्रकार से उपस्थित करने की प्रेरणा बलवती हो गई है। कुछ लोग प्राचीन रस-सिद्धान्त को अधिक महत्त्व देने लगे हैं। उनसे भी अग्रसर हुआ है दूसरा दल, जो मनुष्यों के विभिन्न मानसिक आकारों के प्रति कुतुहलपूर्ण है, अथक व्यक्ति-वैचित्र्य पर विशेष रखने वाला है। ये लोग अपनी समझी हुई कुछ विचित्रता मात्र को स्वाभाविक चित्रण कहते हैं क्योंकि पहला चरित्र-चित्रण तो आदर्शवाद से बहुत घनिष्ठ हो गया है, ...यह विचारणीय है कि चरित्र-चित्रण को प्रधानता देने वाले ये दोनों पक्ष रस से कहाँ तक सम्बद्ध होते हैं। इन दोनों पक्षों का रस से सीधा सम्बन्ध तो नहीं दिखाई देता क्योंकि इसमें वर्तमान युग की मानवीय भावनाएँ अधिक प्रभाव डाल चुकी हैं जिसमें व्यक्ति अपने को विरुद्ध स्थिति में पाता है। फिर उसे साधारणतः अभेद वाली कल्पना रस साधारणीकरण कैसे हृदयंगम हो? वर्तमान युग बुद्धिवादी है, आपाततः उसे दुःख को प्रत्यक्ष सत्य मान लेना पड़ा है। उसके लिए संघर्ष अनिवार्य-सा है।' इस विचार को पढ़ने से लगता है कि प्रसाद भारतीय नाट्य-सिद्धान्त के ही मूलतः पक्षपाती हैं। परन्तु डॉ. गोपीनाथ तिवारी का मत भी सत्य प्रतीत होता है कि उन्होंने (प्रसाद) 'अपने नाटकों में पश्चिमी नाट्य-शैली को अपनाया है। यह युग का तकाजा था और प्रसाद का अपना दृष्टिकोण था।' प्रसाद के नाटकों में पाश्चात्य और पौराणिक नाट्य-शैलियों का सफल

समन्वय हुआ है। अतः प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' के नाट्य-शिल्प का मूल्यांकन करते समय हमें भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही नाट्यशास्त्रियों के विचारों को ध्यान में रखना चाहिए।

### वस्तु-विन्यास

'स्कन्दगुप्त' ख्यात इतिवृत्त-प्रधान नाट्य-रचना है। कथानक का प्रारंभ उज्जयिनी में गुप्त-साम्राज्य से स्कन्धावार से होता है। स्कन्दगुप्त अधिकार-सुख की मादकता की उपेक्षा करता है। वह गुप्त-कुल के उत्तराधिकार के अव्यवस्थित नियम के कारण उदासीन है। मालव राज्य पर विदेशियों का आक्रमण होता है। स्कन्दगुप्त रक्षा के लिए जाता है। राजधानी में अनन्तदेवी कुचक्र करती है। कुमारगुप्त का निधन होता है। पृथ्वीसेन, महादण्डनायक और महाप्रतिहारी अन्तर्विद्रोह के पक्षपाती नहीं हैं अतः आत्महत्या कर लेते हैं। भटार्क और बौद्ध कापालिक प्रपंचबुद्धि अनन्तदेवी के साथ मिले हुए हैं। सब मिलकर देवकी की हत्या के लिए षड्यन्त्र करते हैं। उसी समय स्कन्द वहाँ पहुँच कर षड्यन्त्र को विफल कर देता है। अवन्ती में स्कन्द का राज्याभिषेक होता है। स्कन्द मालव के धनकुबेर की कन्या विजया की ओर आकर्षित है। किन्तु विजया भटार्क को वरण करती है। मालवकुमारी देवसेना स्कन्द को चाहती है। राज्याभिषेक के उपरान्त अनन्तदेवी मुक्त होकर पुनः हूणों से मिलकर विद्रोह करती है। इस युद्ध में भटार्क की सेना स्कन्द के साथ विश्वासघात करती है। बन्धुवर्मा इस युद्ध में वीरगति प्राप्त करता है। भटार्क कुम्भा का बाँध तोड़ देता है। उसमें स्कन्द की सेना क्षत-विक्षत और अस्त-व्यस्त हो जाती है। स्कन्द अकेला, असहाय और निरवलम्ब होकर भटकता है। कमला से प्रेरणा पाकर वह उत्साहित होता है। विजया स्कन्दगुप्त का प्रेम पुनः प्राप्त करना चाहती है पर विफल होने पर आत्महत्या कर लेती है। शव-संस्कार के समय भटार्क को उसका रत्न गृह मिलता है। उससे सेना संगठित की जाती है। स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के नेतृत्व में पुनः हूणों से निर्णायक युद्ध होता है, जिसमें हूण पराजित होते हैं। स्कन्द पुरगुप्त को रक्त का टीका लगाकर युवराज बनाने की घोषणा करता है। स्वयं आजीवन कुमार रहता है। देवसेना की 'आह, वेदना मिली विदाई' से नाटक का अन्त होता है।

उक्त संक्षिप्त कथा को नाटककार ने पाँच अंकों में विस्तारपूर्वक अंकित किया है और कथा-संगठन पर भी पूर्ण ध्यान दिया है। इस नाटक की आधिकारिक कथावस्तु का सम्बन्ध मगध-साम्राज्य से है तथा प्रासंगिक वृत्त का मालव राज्य से। इस नाटक के नायक 'स्कन्दगुप्त' के उद्देश्य की पूर्ति मालव नरेश बन्धुवर्मा उनके बन्धु भीमवर्मा रानी जयमाला एवं देवसेना के सहयोग के बिना अति कठिन है। आधिकारिक कथा के लिए प्रासंगिक वस्तु की ऐसी उपादेयता उनके अन्य नाटकों में फलित नहीं हुई। इस नाटक में प्रसाद जी, 'नान्दी, प्रस्तावना आदि नाट्य-रूढ़ियों का परिपालन तो नहीं किया है, किन्तु वस्तु-शिल्प की दृष्टि से कार्यावस्थाओं, अर्थ-प्रकृतियों एवं सन्धियों का सन्निवेश मनोयोगपूर्वक किया है। भारतीय एवं पाश्चात्य परम्परावादी आचार्यों ने इस बात पर बल दिया है कि नाटक को कम-से-कम पाँच अंकों की रचना होनी चाहिए। प्रसाद जी की यह एकमात्र रचना है जिसमें सर्वाधिक अंक हैं और उनकी संख्या पाँच है। डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने स्कन्दगुप्त का विवेचन अंकानुसार कार्यावस्था मानकर किया है और कई स्थलों पर खेद प्रकट किया है कि प्रसाद जी पाँचवें अंक में चित्रित कुछ कथांश को यदि चौथे अंक में ही देते तो नियताप्ति की अवस्था का सुन्दर रूप खड़ा हो गया होता। (प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ 85) किन्तु कार्यावस्थाएँ अंकानुसार नहीं होती। भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुसार प्रसाद जी को पूर्ण

स्वच्छन्दता थी कि वे कार्य की अवस्थाएँ जहाँ अपने लक्षणानुसार ठीक बैठती है वहीं मानते। इसमें प्रसाद जी का कोई दोष नहीं है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक का विवेचन करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि स्कन्द का मुख्य उद्देश्य समष्टिगत या राष्ट्रीय रूप में भारत भूमि को बर्बर हूणों के आतंक से मुक्त करना तथा राष्ट्रीय अन्तःकलह को निर्मूल करना है और व्यक्तिगत रूप से 'स्कन्द' की उपलब्धि है, निःस्वार्थ प्रेमिका, देवसेना, जिसका स्कन्द से अशरीरी प्रेम है। नाटक को पढ़ने से लगता है मानो स्कन्द अपने लिए सब कुछ प्राप्त करके भी कुछ प्राप्त नहीं करता है। वह गीता के निष्काम कर्म का प्रतीक बन गया है। कुछ पाश्चात्य आलोचकों ने स्कन्द के अन्तर्द्वन्द्व पर 'हैमलेट' का प्रभाव बताने की चेष्टा की है। यदि इस नाटक पर लोकमान्य तिलक के 'गीता रहस्य' एवं महात्मा गाँधी के 'अनासक्तियोग' का प्रभाव माना जाये तो अधिक तर्क-संगत होगा। क्योंकि इस नाटक की रचना जिस काल में हुई वह दशक भारतीय-जीवन में अन्तर्द्वन्द्व एवं बहिर्द्वन्द्व की दृष्टि से इतना संकुल है कि प्रसाद जी जैसा संवेदनशील कलाकार उससे अछूता रह नहीं सकता।

'स्कन्दगुप्त' की कथा पर विचार करते हुए देखते हैं कि उसमें भारतीय और पाश्चात्य नाट्य विधियों का सुन्दर समन्वय हुआ है तथा दोनों ही के विकास-तत्त्व स्पष्ट दिखाई देते हैं। प्रथम अंक में प्रारम्भ नामक कार्यावस्था सष्ट दृष्टिगोचर होती है। इसी अंक में पात्रों का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है और गृह-कलह, सम्राट की विलासिता, युवराज स्कन्द की उदासीनता, वीरसेन की असामायिक मृत्यु व बर्बर हूणों के निरन्तर आक्रमण की सूचना आदि प्रमुख घटनाओं का उल्लेख है। इस अंक की एक अन्य विशेषता यह है कि यहाँ आधिकारिक कथावस्तु की आरम्भावस्था की समाप्ति के साथ ही स्कन्द के व्यक्तिगत जीवन से सम्बद्ध प्रेम की प्रासंगिक कथावस्तु का आरम्भ भी होता है। जयमाला और देवसेना के अतिरिक्त विजया की अपरिचित मूर्ति के दर्शन होने पर स्कन्द का उसकी ओर आश्चर्ययुक्त आकर्षण दिखाकर नाटककार ने प्रासंगिक कथानक का सूत्रपात भी किया है—

विजया—(झाँक कर) अहा! कैसी भयानक और सुन्दर मूर्ति है।

स्कन्द—(विजया को देखकर) यह—यह कौन?

द्वितीय अंक प्रयत्नावस्था का है और इसमें पाश्चात्य नाट्य शास्त्र की विकास की अवस्था भी है। यह प्रयत्न दो विषयों का है। साध्य की सिद्धि में दो महत्त्वपूर्ण बाधाएँ हैं—(1) गृह-कलह जो अनन्तदेवी और भटार्क के कुचक्र-रूप में दिखाई पड़ती है। और (2) बर्बर आक्रमणकारियों का आतंक, जिससे सम्पूर्ण प्रजा त्रस्त है। इन्हीं दोनों बाधाओं को हटाने का प्रयत्न इस अंक में हुआ है। भटार्क और अनन्तदेवी देवकी की जीवन लीला समाप्त करना चाहते हैं किन्तु स्कन्द उनके षड्यन्त्र को विफल कर देता है और अपनी माता देवकी के प्राणों की रक्षा करता है। इसके अतिरिक्त प्रेम-कथा का भी विकास होता है। इस अंक में विजया स्वीकार करती है कि वह स्कन्द की ओर आकृष्ट है; किन्तु स्कन्द के वैराग्यमूलक भावों को देखकर वह भटार्क का वरण कर लेती है। इससे स्कन्द के हृदय पर गहरा आघात पहुँचता है। देवसेना भी इस रहस्य को जान जाती है कि स्कन्द विजया से प्रेम करता है अतएव वह अपना कर्तव्य स्थिर कर लेती है।

तृतीय अंक में भारतीय प्राप्त्यावस्था के स्थान पर पाश्चात्य 'चरम सीमा' का रूप अधिक स्पष्ट है। क्योंकि इसमें स्कन्द की जीवनधारा का क्रम पूर्ववत् ही रहता है। अनन्तदेवी, भटार्क प्रपंचबुद्धि का कुचक्र

उसी प्रकार चल रहा है। देवकी की ओर से असफल होकर ये लोग देवसेना को अपना लक्ष्य बनाते हैं। जैसे ही विजय देवसेना को बहका कर श्मशान में पहुँचती है, ठीक उसी समय मातृगुप्त और स्कन्द वहाँ पहुँचकर उसकी रक्षा करते हैं। इसके पश्चात् बौद्धों को निमन्त्रण एवं मगध की दुरभि-संधि से बल पाकर विदेशी हूण आर्य साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए आक्रमण करते हैं। स्कन्द एवं उसका सहायक वर्ग विजय के लिए उद्योगशील होते हैं। घोर युद्ध में हूण भागने लगते हैं किन्तु इस बार विरोधी दल किसी व्यक्ति का नहीं, आर्य साम्राज्य है और कुम्भा का बाँध तोड़ दिया जाता है। स्कन्द और उसकी सेना बह जाती है। इस प्रकार स्कन्द के लिए आशंका, विरोध और कष्ट की यहाँ चरम सीमा (Climax) दिखाई पड़ती है। इसके साथ ही अन्तः सलिला सरिता के समान प्रेम का प्रसंग भी और अधिक रंग पकड़ता है। बन्धुवर्मा और देवसेना स्कन्द को अपना राज्य अर्पित करके उसे उपकारों के बोझ से दबा देते हैं। इस प्रकार विवश होकर प्रतिदान में उसे अपना प्रेमी देवसेना को देना ही पड़ता है। विजया इस तथ्य से परिचित हो जाने पर प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित होकर देवसेना का वध करने के लिए श्मशान भूमि में ले जाती है। स्कन्द तत्क्षण वहाँ पहुँचकर उसकी रक्षा करता है। भयभीत अवस्था में देवसेना उसका आलिंगन करती है जिससे उसे इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाता है कि देवसेना उससे प्रेम करती है। इधर विजया के चरित्र का चांचल्य इस बात से भी स्पष्ट होता है कि वह भटार्क के साथ रहकर युवराज पुरगुप्त का मनोविनोद करती दिखाई देती है।

भारतीय नाट्य-विधान के अनुसार चतुर्थ अंक में 'नियताप्ति' की अवस्था होनी चाहिए। यहाँ फल-प्राप्ति निश्चित हो जानी चाहिए। किन्तु यहाँ फल की प्राप्ति सर्वथा नियत नहीं होती। उसका प्रच्छन्न प्रतिपादन मात्र है। हाँ पाश्चात्य नियति का रूप अत्यन्त स्पष्ट है। स्कन्दगुप्त का एकाकी और निःसहाय रूप में बचे रहना, सम्पूर्ण धर्म संघों का विरुद्ध हो जाना, उसकी माता देवकी की मृत्यु, समस्त साधनों का विश्रृंखल होना और सामरिक शक्ति का टूट जाना आदि निगति का रूप दिखाता है। स्कन्द निराश हो जाता है। वह विचित्र अवस्था में है—**बौद्धों का निर्माण, योगियों की समाधि और पागलों की सी सम्पूर्ण विस्मृति मुझे एक साथ चाहिए। चेतना कहती है कि तू राजा है और उत्तर में जैसे कोई कहता है कि तू खिलौना है। तेरा मुकुट श्रमजीवी की टोकरी से भी तुच्छ?** कुछ स्थितियाँ अवश्य ऐसी आती हैं जिनसे भविष्य की आशा की जा सकती है जैसे विरोधी पक्ष में फूट, भटार्क का हृदय-परिवर्तन, स्कन्द तथा कुछ अन्य वीरों के बचे रहने की सूचना आदि। प्रेम के क्षेत्र में भी यहाँ परिवर्तन दिखाई देता है। विजया पुनः एक बार स्कन्द की ओर अग्रसर होती है—**“एक नहीं ऐसे सहस्रों स्कन्दगुप्त, ऐसे सहस्रों देव-तुल्य उदार युवक इस जन्मभूमि पर उत्सर्ग हो जाएँ।”** किन्तु तब तक स्कन्द उसकी ओर से असफल होकर देवसेना के प्रति अपना दायित्व स्थिर कर लेता है।

पाँचवें अंक में बड़े प्रभावशाली ढंग से कथा समाप्त होती है अतः न केवल इसमें पाश्चात्य नाट्य विधि की समाप्ति नामक कार्यावस्था है अपितु इसी अंक में फलागम भी होता है। यदि भटार्क की देश-रक्षा के व्रत की सूचना और साम्राज्य के बिखरे हुए सब रत्नों को एकत्र करने वाले पर्णदत्त का संकल्प चतुर्थ अंक में आ जाता तो नाटक में नियताप्ति को वहीं स्थान मिल जाता किन्तु प्रसाद इन्हीं साधनों के द्वारा फल-प्राप्ति करना चाहते हैं। विजया का रत्नागार लेकर भटार्क पवित्र उत्साह से नवीन सेना का संकलन प्रारम्भ करता है। प्रख्यात कीर्ति एवं धातुसेन के प्रयत्न से अनन्तदेवी और धर्मसंघों में भी

अनबन हो जाती है। हूणों के साथ घोर युद्ध में सम्राट स्कन्द की जीत होती है। एक ओर विदेशी सत्ता का प्रतीक खिंगिल बन्दी है और दूसरी ओर देशद्रोह के प्रतीक पुरुगुप्त और अनन्तदेवी बन्दी हैं। खिंगिल को सिंधु के पार न जाने का आदेश दे वह मुक्त करता है और अपने रक्त का टीका लगाकर पुरुगुप्त को युवराज बनाता है। फलागम का यह रूप अत्यन्त भव्य एवं प्रभावोत्पादक है। किन्तु इस सार्वजनिक आयोजन में स्कन्दगुप्त देवसेना के प्रति अपने गूढ़ मार्मिक भाव की व्यंजना कैसे कर सकता था। अन्तिम अंक में देवसेना उसके प्रणय-प्रस्ताव को ठुकरा देती है, दूसरी ओर विजया के प्रेम-प्रस्ताव को वह स्वयं ठुकरा देता है। ऐसी अवस्था में हतभाग्य स्कन्दगुप्त अकेला ही रह जाता है। डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के शब्दों में—“मानव जीवन का यह कठोर वैषम्य उसकी व्यक्तिगत कथा का मूल भाव है।” यद्यपि नाटक का अन्त **पंचम अंक में पंचम दृश्य** में हो जाता है, किन्तु कवि-नाटककार ने देवसेना के लिए दो पृष्ठ-अत्यन्त सकरुण होकर दिये हैं। इसे नियम का व्याघात भी मान सकते हैं।

**अर्थ-प्रकृतियों एवं पाँच-सन्धियों** की दृष्टि से भी स्कन्दगुप्त नाटक का अध्ययन न केवल रोचक है अपितु प्रसाद जी के वस्तु-शिल्प-कौशल का भी परिचायक है। पहले अर्थ प्रकृति और ‘सन्धि’ शब्द का अर्थ जान लेना आवश्यक है। कथावस्तु को प्रधान फल की प्राप्ति की ओर अग्रसर करने वाले चमत्कारयुक्त अंश को ‘अर्थ-प्रकृति’ कहते हैं। इनके पाँच भेद माने गए हैं—(1) बीज, (2) बिन्दु, (3) पताका, (4) प्रकरी और (5) कार्य। ‘सन्धि’ शब्द का अर्थ है मेल अथवा जोड़। नाटक में भी इनकी स्थिति कार्यावस्थाओं और अर्थप्रकृतियों के सन्धि-स्थल पर ही होती है। कार्य-अवस्था जहाँ पर समाप्त होती है वहीं पर सन्धि-विशेष अर्थ-प्रकृति से मेल करा देती है। ये सन्धियाँ भी पाँच प्रकार की होती हैं—**मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण**। स्कन्दगुप्त नाटक में प्रकृति की दृष्टि से बीज नामक अर्थ प्रकृति का उदय समय होता है, जब मालव दूत तो स्कन्दगुप्त से आश्वासन प्राप्त कर प्रणाम कर चला जाता है और विछिन्न होती हुई कथा-वस्तु को आगे बढ़ाते हुए पर्णदत्त कहता है—“**युवराज! आज यह वृद्ध हृदय से प्रसन्न हुआ और गुप्त साम्राज्य की लक्ष्मी भी प्रसन्न होगी।**” क्योंकि गुप्त साम्राज्य की लक्ष्मी की प्रसन्नता का स्वल्प रूप में उभेद यहाँ किया गया है। अतः यही विभिन्न अर्थों एवं वीर, श्रृंगारादि रसों की प्रेरक मुख-सन्धि मानी जायेगी। द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य में स्कन्दगुप्त एवं चक्रपालित के वार्तालाप में स्कन्दगुप्त की यह उक्ति—“विजय का क्षणिक उल्लास हृदय की भूख मिटा देगा? कभी नहीं? त्याग।” यहाँ बिन्दु नामक अर्थ-प्रकृति का प्रारम्भ है। द्वितीय अंक में अनेक रूप में अर्थ-गौरव की रक्षा के लिए ऐसे उद्गार व्यक्त हुए हैं और यही प्रतिमुख सन्धि का सन्निवेश है। द्वितीय अंक में भी स्कन्दगुप्त कहता है—“**नहीं चक्र! अश्वमेध पराक्रम स्वर्गीय सम्राट कुमारगुप्त का आसन मेरे योग्य नहीं है। मेरा अकेला जीवन है। मुझे...!**” अतः बिन्दु और प्रयत्न के अनुगमन से यहाँ प्रतिमुख सन्धि की सुन्दर योजना की गई है। पताका अर्थ-प्रकृति के रूप में वहीं से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका अपना कोई भिन्न लक्ष्य है, फलाधिकारी के मुख्य कार्य-व्यापार में ही बन्धुवर्मा साथ देता जाता है और उसकी सिद्धि का सर्वोत्तम साधन हुआ निरन्तर उद्योगशील दिखाई पड़ता है। बन्धुवर्मा की मृत्यु के समय तक पताका चलती है। मगध में अनन्तदेवी, पुरुगुप्त, विजया और भटार्क के सम्मेलन के साथ गर्भ-संधि प्रारम्भ होती है। यहाँ बीज का उतार-चढ़ाव दिखाई देता है और कौतूहल बढ़ जाता है। दुविधा की दशा चतुर्थ अंक के द्वितीय दृश्य तक चलती है। यहाँ तक गर्भ-संधि रहती है। चतुर्थ अंक के सप्तम दृश्य में प्रकरी के रूप में कमला

का स्कन्दगुप्त से मिलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें शेषनाग, धातुसेन, मातृगुप्त इत्यादि के अनेक छोटे-छोटे वृत्त आते हैं। स्कन्दगुप्त का विचित्र अवस्था में प्रवेश **विमर्श-संधि** का स्थल है। इस दृष्टि से स्कन्द के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं—“यह नीति और सदाचारों का आश्रय-वृक्ष गुप्त साम्राज्य हरा-भरा रहे और कोई भी इसका उपयुक्त रक्षक हो। ओह जाने दो, गया सब कुछ गया।” युद्ध में कुंभा के बाँध के टूटने से उत्पन्न घोर विपत्ति के कारण स्कन्दगुप्त इस दशा तक पहुँच जाता है। इसके उपरान्त नाटक के शेष अंश में वस्तु-व्यापार की ऐसी योजना की गई है कि भारत की बिखरी शक्तियाँ संघटित होती हैं, सभी के हृदय में स्वदेशाभिमान का भाव जाग्रत होता है। अन्त में वह समय आता है कि बीज रूप में पर्णदत्त ने जिस साम्राज्य की लक्ष्मी के प्रसन्न होने की बात कही थी, वह गुप्त साम्राज्य की लक्ष्मी भी वस्तुतः प्रसन्न होती है। यही कार्य नामक अर्थ प्रकृति है। यह बिखरी हुई राष्ट्र शक्ति का राष्ट्र-गौरव के लिए एकनिष्ठ होना और उसके द्वारा प्रयोजन की सिद्धि निर्वहण-सन्धि का अत्युत्तम उदाहरण है।

इस प्रकार ‘स्कन्दगुप्त’ नाटक में भारतीय एवं पाश्चात्य कार्यावस्थाओं के साथ अर्थ-प्रकृतियों और सन्धियों का अच्छा निर्वाह हुआ है।

यद्यपि स्कन्दगुप्त प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ नाटक कहा जाता है, तथापि इसके कथा-संयोजन में कुछ दोषों की चर्चा भी की जाती है। शास्त्रीय दृष्टि से नाटक में सबसे पहला दोष अनावश्यक दृश्य-योजना का है। पाँच अंकों का यह नाटक दृश्यों की दृष्टि से क्रमशः सात, सात छः, सात और पाँच दृश्यों में विभक्त है। जहाँ अंकों की दृष्टि से नाटक बड़ा है, वहीं दृश्यों की दृष्टि से भी उसका सन्तुलन ठीक नहीं कहा जा सकता। सामान्यतः पहले अंक से दूसरे अंक में, दूसरे से तीसरे में, तीसरे से चौथे में और चौथे से पाँचवें अंक में दृश्य कम होने चाहिये। किन्तु इस नाटक में इस क्रम का सर्वथा अभाव है। चतुर्थ अंक में तीन दृश्य सफलता से कम किये जा सकते हैं। न्यायाधिकरण में मातृगुप्त और मालिनी के वार्तालाप का नाटक के मूल कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह केवल यह दिखाने के लिए कि मातृगुप्त का भी किसी नारी के प्रति आकर्षण था और नारी ने उसके साथ विश्वासघात किया—रखा गया है, अन्यथा उसका कोई प्रयोजन नहीं। इसे हटाया जा सकता है। अगले दृश्य में धातुसेन और प्रख्यातकीर्ति के माध्यम से यह बताया गया है कि मातृगुप्त विरक्त होकर घूम रहा है और भिक्षु तथा बौद्ध जनता में कुछ तनातनी है। ये दोनों बातें सूच्य कथा में आ सकती थी। इसी प्रकार पाँचवें दृश्य में ब्राह्मण और बौद्ध संघर्ष दिखाया गया है—यह भी तत्कालीन सामयिक समस्या है—परिस्थिति के अनुसार दर्शक पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः चौथे अंक से इन तीन दृश्यों को नाटक में से सरलतापूर्वक हटाया जा सकता है। पाँचवें अंक में भी प्रथम दृश्य अनावश्यक—सा जान पड़ता है। इस दृश्य के लम्बे स्वगत को थोड़े हेर-फेर के साथ दूसरे दृश्यों में दिया जा सकता है। इस अंक के चतुर्थ दृश्य में नाटक अपने आप अपने उद्देश्य में पूर्ण होकर समाप्त हो जाता है। पुरुगुप्त के राज्याभिषेक के पश्चात् नाटक की दृष्टि से फल प्राप्ति के रूप में कुछ भी शेष नहीं रह जाता। पाँचवें दृश्य में यदि प्रसाद जी देवसेना के चरित्र का पूर्ण विकास दिखाना चाहते थे जो यह काम द्वितीय दृश्य में कुछ वाक्य जोड़कर किया जा सकता था। अन्तिम दृश्य में जो वार्तालाप है उनसे दर्शक के मन पर कोई नूतन प्रभाव नहीं पड़ता। इस दृष्टि से भी यह दृश्य अनावश्यक है। इस प्रकार दो अंकों से पाँच दृश्य निकाल कर नाटक को अपने में पूर्ण बनाये रखा जा सकता था। इसीलिए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है—“यह मानते हुए भी कि स्कन्दगुप्त का वस्तु-विन्यास आदर्श वस्तु-रचना का उदाहरण नहीं है,



और प्रारम्भिक तीन और अन्तिम अंकों की धारा समन्वित नहीं हो पाई है, यह कहना होगा कि इस नाटक की कला-क्षमता उनके तीन अन्य नाटकों की अपेक्षा ऊँची है।...पहले दो अंकों में घटना-क्रम इतने सुलझे रूप में आगे बढ़ा है कि अन्तिम अंकों की शिथिलता खटकने लगती है। दो अंकों में व्यापार का यथेष्ट विकास हो जाता है। तीसरे अंक में भी घटनाओं का प्रभाव बना रहता है। परन्तु चौथे और पाँचवें अंकों में नाटक के उदात्त रूप को बनाये रखने में नाटक की कथा पूर्णतः समर्थ नहीं है। चौथा और पाँचवाँ अंक तो घटनाओं और पात्रों को अन्तिम विजय की ओर ले जाने का साधन मात्र है। इतिहास की सत्यता नाटकीय परिपाक का स्थान नहीं ले सकी।” ( *आधुनिक साहित्य* : पृष्ठ 244-45)। डॉ. गोविन्द चातक ने अजातशत्रु में एकसूत्रता का अनुभव किया था लेकिन स्कन्दगुप्त में विश्रृंखलता का संकेत किया है—“स्कन्दगुप्त भावों, विचारों और उद्देश्य की दृष्टि से जितना श्रेष्ठ है, शिल्प की दृष्टि में उतना वह ऊँचा नहीं उठ पाता है।... स्कन्दगुप्त की दृश्य-योजना और कथा वस्तु का संयोजन कहीं-कहीं दोषपूर्ण है। दृश्यों का आधिक्य; शीघ्र परिवर्तन, प्रासंगिक कथावस्तु को आधिकारिक बनाने का प्रयत्न नाटक की सामग्री बिखरा देता है।” (प्रसाद के नाटक : *स्वरूप और संरचना*, पृ. 130)

**आकस्मिक घटनाओं के प्रति मोह** भी इस नाटक में देखा जा सकता है। कथानक की घटनाएँ इतनी दूर-दूर तक बिखरी हुई हैं कि उसमें आकस्मिक दृश्य-परिवर्तन करना पड़ता है, जो अस्वाभाविक लगता है। शर्वनाग देवकी की हत्या करने का प्रयत्न पाटलिपुत्र के राज-घर में करता है। मालवा में रहने वाला स्कन्द सहसा मगध पहुँचकर, किवाड़ तोड़कर अन्दर प्रवेश करता है। दूसरे दृश्य में उसी स्कन्द का राज्याभिषेक मालवा में होता है। विजया के दाह-संस्कार के समय खोदते हुए भटार्क को अचानक रत्नगृह का मिलना भी चमत्कारपूर्ण ही है। इस प्रकार के दृश्य-परिवर्तन से वस्तुगठन में शैथिल्य आ जाता है।

**वस्तु-बाहुल्य के कारण** कथा के बहुत से अंशों की पुनरावृत्ति करनी पड़ी है, जिससे कि दर्शक प्रमुख घटनाओं को स्मरण रख सकें। पाँचवें अंक में मुद्गल सारे कथानक पर सिंहावलोकन करता-सा प्रतीत होता है—“जयमाला यह सुनकर कि बन्धुवर्मा वीरगति को प्राप्त हुए, सती हो गई, और देवसेना को लेकर बूढ़ा पूर्णदत्त देव-कुलिक का सा महादेवी की समाधि पर जीवन व्यतीत कर रहा है। चक्रपालित, भीमवर्मा और मातृगुप्त राजाधिराज को खोज रहे हैं।...विजया का मन कुछ फिरा है...अनन्तदेवी ने पुरगुप्त के साथ हूणों से सन्धि कर ली है।...समस्त भारत हूणों के चरणों में लोट रहा है और भटार्क मूर्ख के समान अपने कार्यों पर पश्चाताप कर रहा है।”

उपर्युक्त बातों को जहाँ नाटक की कथावस्तु के गठन में दोष कहा गया है वहाँ इनका औचित्य भी सिद्ध किया गया है। आज के यथार्थवादी आलोचक आकस्मिकता को भले ही इस नाटक की अनौचित्यपूर्ण टेकनीक मानते हैं किन्तु इस आकस्मिकता द्वारा नाटकीय प्रवाह में गत्यात्मक मोड़ ले आने में लेखक की कुशलता सराहनीय हो गई है। देवकी की हत्या के अवसर पर स्कन्दगुप्त की आकस्मिक उपस्थिति भटार्क के षड्यन्त्र को विफल बनाती है और इस घटना के घटित होने या इसके आकस्मिक आघात से नाटक में नयी स्थितियाँ और नये मोड़ आते हैं। इस दिशा में प्रो. राजेश्वर अर्गल का मत इस प्रकार है—“नाटक का एक भी दृश्य ऐसा नहीं जो अपने आधिकारिक स्थान से हटा हुआ हो। प्रत्येक दृश्य मूल कथानक से इस प्रकार सम्बद्ध है कि एक दृश्य की न्यूनता सारी श्रृंखला को विच्छिन्न कर देगी।...स्कन्दगुप्त का प्रथम दृश्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का जितना अच्छा परिचायक हुआ है उतना कोई अन्य दृश्य नहीं, परन्तु इसके कारण

उसका मनोरंजन घटा हो, ऐसी कोई बात नहीं। पूर्णदत्त का स्कन्द से वार्तालाप, चक्रपालित द्वारा उदासीनता का स्पष्टीकरण और स्कन्द का दूत को उत्तर क्या कम मनोरंजक और भावपूर्ण स्थल हैं? क्या हमारी उत्कण्ठा और रसात्मक प्रवृत्ति इन स्थलों में सुप्त ही पड़ी रहती है...घटना बाहुल्य उसने एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ही रखा है।...घटनाओं का बाहुल्य और उनकी तीव्रगति हमारी मानसिक अवस्था को विक्षिप्त कर देती है जिसके कारण हमें आपसे आप क्षत-विक्षत भारत का पूर्व अनुभव होने लगता है।...कुछ लोगों ने स्कन्दगुप्त के बौद्ध और और ब्राह्मण संघर्ष वाले दृश्य को अनावश्यक बतलाया है, लेकिन स्कन्द के उत्कर्ष के लिए भारत के दयनीय दृश्य का चित्रण नितान्त आवश्यक है। यह दृश्य केवल नाटककार की इतिहासनिष्ठा का द्योतक नहीं और यद्यपि गुप्तकालीन परिस्थितियों का चित्रण करने में उसका सबसे प्रमुख स्थान है, लेकिन साहित्य और नाटक की दृष्टि से भी उसका कम महत्त्व नहीं। इसमें भारत की शोचनीय दशा का चित्रण है जिससे स्कन्द का कार्य और भी कठिन हो जाता है। इन्हीं आन्तरिक झगड़ों के कारण ही तो इस आर्यावर्त में हूण प्रवेश कर सके थे।...दर्शकों में उत्सुकता बनाये रखने में भी नाटककार बहुत सफल हुआ है...कहीं-कहीं तो भावों को चरमसीमा पर ले जाकर एकदम पटाक्षेप करने से नाटककार दर्शकों को ऊपर ले जाकर शून्य में छोड़ देता है जिससे तीव्रतम रसोत्पादन में नाटककार सफल हो चुका है। देवकी का मृत्यु के इतने समीप पहुँचना हमारे कौतूहल और भावावेश को बढ़ाता है। स्कन्दगुप्त का ठीक समय पहुँचना उतना अस्वाभाविक नहीं, क्योंकि उसके पूर्व ही धातुसेन और मुद्गल द्वारा कारागार से देवकी की मुक्ति की बात और स्कन्द का मगध पहुँचना हमें मालूम हो चुका था।...कुछ लोगों को भटार्क को अपार धनराशि मिलना घटनाओं की समाप्ति के लिए असम्भव कल्पना जान पड़ेगी। लेकिन ऐसी नित्य प्रति ही छोटी-छोटी घटनाएँ हमारे जीवन में होती रहती हैं। फिर भी नाटककार ने इस घटना का संकेत बहुत पूर्व ही विजया के द्वारा करा दिया था। 'मेरा रत्नगृह अभी बना है, उसे सेना संकलन के लिए सम्राट को कहीं आसपास ही दूँगी और एक बार बँगी।' यह सम्भव है कि विजया ने इन रत्नगृहों को भूमि में ही छिपा रखा हो। इस प्रकार रत्नगृहों का भूमि से निकल आना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं।" ( *जयशंकर प्रसाद* : सं. डॉ. मदान : पृ. 231-232)। इसी प्रकार डॉ. शान्ति मलिक ने अपने शोध-प्रबन्ध में लिखा है—“स्कन्दगुप्त प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इस नाटक का वस्तु-विन्यास कतिपय त्रुटियों के होते हुए भी अब तक के रचित सभी नाटकों की अपेक्षा अधिक संगठित एवं सुसम्बद्ध है।...इस नाटक की दोनों प्रासंगिक कथाएँ आधिकारिक कथा-वस्तु से पूर्ण तथा आबद्ध हैं। अन्य नाटकों के सामने ये कथासूत्र मूल कथानक पर अधिकार करने या उसे अपदस्थ करने का प्रयास नहीं करते हैं, इनमें कलात्मक एवं पुष्ट सन्तुलन मिलता है। आरम्भ से ही ये मुख्य कथानक के अंग बनकर आते हैं और उसके प्रवाह को गतिशील कर, अन्ततः उसी से समाकर एकाकार हो जाते हैं, इससे कहीं कोई अंश गतिहीन, नीरस एवं मन्थर नहीं होता। पुनः नाटक की घटनाओं और क्रिया-व्यापारों की सुन्दर एवं सफल अन्विति से कथा प्रसार कहीं भी कुण्ठित नहीं होता। वस्तुतः वस्तु-संगठन की दृष्टि से यह कृति लेखक की अन्य सभी बड़ी नाट्य-रचनाओं से श्रेष्ठ है, उसमें प्रसाद की नाट्य कला अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गयी है।" ( *उप.*, पृ. 111-112)

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'स्कन्दगुप्त' के वस्तु-विन्यास के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी विचार मिलते हैं। नाटक के अन्तिम दोनों दृश्यों को नाटकीय वस्तु-विन्यास की समग्रता में रखकर स्पष्टतः कहा जा

सकता है कि नाटक में प्रभाव की अन्विति का संयोजन समुचित रूप में नहीं हो पाया है। फिर भी स्कन्दगुप्त नाटक का कथा-संगठन कलात्मक है। प्रासंगिक कथाओं को इस प्रकार समन्वित किया गया है कि न तो उनमें बिखराव आया है और न एक कथा दूसरी कथा पर हावी हो सकी है। मालव, मगध, कश्मीर, सिंहल तथा कुंभ के रण-क्षेत्र की कथाएँ स्कन्द के वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय जीवन की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करती हैं। राजनीति और इतिहास की घटनाओं के घटाटोप के मध्य वैयक्तिक चरित्र तथा व्यक्ति का अन्तर्द्वन्द्व इस प्रकार चित्रित है कि कथानक का आकर्षण बहुत बढ़ जाता है। एक तरह से सारा वस्तु-विन्यास दो स्तरों पर चलता है, जिससे नाटक में अधिक स्वाभाविकता आ गई है। वैयक्तिक क्रिया व्यापार द्वारा सामाजिक महत्त्व के कार्यों की सृष्टि शेक्सपियर के कुछ नाटकों में देखी जा सकती है। अंग्रेजी नाट्य विधान में इसे Enveloping Action कहते हैं। ऐसा ही क्रिया-व्यापार 'स्कन्दगुप्त' में भी देखने को मिलता है।

'स्कन्दगुप्त' नाटक के वस्तु-विन्यास की अन्य विशेषता यह है कि इसकी कथावस्तु प्रतीकात्मक है। कथानक की प्रतीकात्मकता इस प्रकार है—“परम भट्टारक शिव” कुमार गुप्त विलासोन्मुख होते हैं। उन्हीं की मायाशक्ति 'अनन्तदेवी' उन्हें संकुचित कर देती है। कुमारगुप्त की मृत्यु मायागर्भाधिकारी 'अनन्त' के कारण होती है। उसी अनन्त की शक्ति 'अनन्तदेवी' है। देवकी 'देवी' का पर्याय है जो कि शुद्धा शक्ति का प्रतीक है। एक प्रकार से उसे संकुचित करके पाशबन्दिनी बनाया जाता है। अनन्तदेवी को 'प्रपंचबुद्धि' अर्थात् मलिन भूमिका में उतरी हुई ज्ञानशक्ति के प्रतिनिधि का सहारा मिलता है। भट्टारक (अर्कभट) काल-विभाजक सूर्य का प्रतिनिधित्व करता है। वह 'काल तत्त्व' बनकर 'मलिन-क्रिया-शक्ति के कार्य को सम्पूर्ण नाटक में व्याप्त करता है। ये लोग देवकी के भक्त शर्वनाग को बहका देते हैं। शर्व अर्थात् शिव का 'नाग', शुद्ध रहने पर शिव का आभूषण है और अशुद्ध होने पर 'भेद-विषय से पूर्ण'। वह देवकी को डसने का यत्न करता है। स्कन्द शिवपुत्र है, षट्मुख है। षट् शक्तियों की अभेद-मयता को अपने में व्यक्त कर विस्फुरित होता है। पाँच कंचुकों की विमल भेदमयता और छठी शुद्ध विद्याशक्ति की अभेदमयी चेतना को वह अपने में समेटे रखता है। स्कन्द, मलिन “अनन्त के ठीक विपरीत आचरण करता है। वही देवकी की रक्षा करता है। मलिन पाश-प्रयासों का नाश होता है और शिवत्व की प्रतिष्ठा होती है। विश्व का विकास शुद्ध और अशुद्ध तत्त्वों के संघर्ष से होता है। यह विकास शिवलीला का ही भाग है। नाटक का मूल कथानक इसी के अनुरूप है।” स्कन्दगुप्त के सामान्य ऐतिहासिक पक्ष के साथ-साथ उसके दार्शनिक प्रतीकात्मक पक्ष का विवेचन भी इस रचना की समझदारी के लिए अपरिहार्य है।

स्कन्दगुप्त नाटक के कथानक को पाश्चात्य और भारतीय दोनों नाट्य शिल्पों के आधार पर गठित किया गया है। किन्तु 'फल-प्राप्ति' सुखान्त के रूप में दिखाने के कारण भारतीयता के प्रति अतिरिक्त आग्रह-सा लगता है। इसमें प्रारम्भ पाश्चात्य पद्धति के अनुसार विरोध से होता है पर अन्त भारतीय आग्रह के कारण सुखान्त में होता है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है कि “स्कन्दगुप्त नाटक को परिणाम में सुखान्त बताया गया है पर उसका वस्तु-विन्यास अंशतः दुखान्त नाटक की पद्धति पर रखा गया है।” वाजपेयी जी इसको वस्तु-विन्यास संबंधी त्रुटि मानते हैं, परन्तु यही तो उनकी कला का सृजन है। इसमें दोनों पद्धतियों के सम्मिश्रण से प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है और यथार्थता आ जाती है।

स्कन्दगुप्त के कथानक के विषय में अन्त में हम आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के इस कथन से सहमति व्यक्त करते हैं—“इतिहास के विशाल चित्र-पटल पर सामयिक प्रेरणा के फलस्वरूप साहित्यिक चित्र खींचना अपने आप में जितना बड़ा कार्य है, उसे देखते हुए वस्तु-कौशल के सर्वांगीण निर्वाह की कमी को क्षम्य मान सकते हैं।”

### चरित्र-चित्रण

मानव मनोवृत्तियों का यथावत् एवं सूक्ष्म चित्र ही नाटक का प्रधान लक्ष्य है। इसीलिए प्रसाद ने अपनी नाट्य-कृतियों में पात्रों के चरित्र-चित्रण पर विशेष ध्यान दिया है। चरित्र-निरूपण में प्रसाद हमारे सामने एक सधे हुए कलाकार के रूप में आते हैं। डॉ. नगेन्द्र के कथनानुसार प्रसाद में “पात्रों में प्राण फूँक देने वाली प्रतिभा की सजीवता अद्वितीय थी।”

‘स्कन्दगुप्त’ के पात्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है—देवता, राक्षस और शुद्ध मानव। स्कन्दगुप्त, देवसेना, पर्णदत्त तथा वीर बन्धुवर्मा ‘देव-वर्ग’ के पात्र हैं। भटार्क, प्रपंचबुद्धि, अनन्तदेवी और विजया दानव वर्ग के तथा सर्वनाग, जयमाला मानव वर्ग के प्रतिनिधि सामान्य पात्र हैं। नाटक के आरम्भ में अनन्तदेवी, भटार्क और विजया जैसे कुचक्रियों को सफल होता दिखाया गया है। परन्तु धीरे-धीरे ‘देव-पात्र’ बल पकड़ते हैं, उनके धैर्य और साहस के सामने दानव-पात्रों को नीचा देखना पड़ता है। मानव-वर्ग के पात्र भी पहले असत् की ओर फिर सत् की ओर उन्मुख दिखाई देते हैं। इस नाटक के पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि देववर्ग के प्रतिनिधि पात्र सर्वथा निर्दोष नहीं हैं तथा दानव-वर्ग के पात्र सर्वथा सदोष नहीं हैं। उनमें दिव्य-अदिव्य, सत्-असत् गुणों का समन्वय होने के कारण वे हमें काल्पनिक प्रतीत न होकर यथार्थ-जगत् के निवासी ही मालूम पड़ते हैं।

स्कन्दगुप्त की पात्र-योजना में एक ओर तो साधारणीकरण का सिद्धान्त लागू होता है और दूसरी ओर व्यक्ति-वैचित्र्यवाला सिद्धान्त भी पाया जाता है। प्रायः प्रत्येक पात्र के हृदय में द्वन्द्व का तूफान उठता है। प्रो. राजेश्वर अर्गल के मतानुसार ‘अंतर्द्वन्द्व और चरित्रों के विकास के कारण ही स्कन्द के चरित्र बहुत ही स्वाभाविक हुए हैं।’ साथ ही प्रसाद ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिकता पर भी ध्यान दिया है। इसीलिए एक ओर तो उन्होंने करुणा, प्रेम, परोपकार, क्षमा, अहिंसा, उदारता आदि विविध मानवीय आदर्शों का चित्रण किया है और दूसरी ओर जीवन-व्यापारों की स्वभाविक अभिव्यक्ति करते समय द्वेष, घृणा, छल और ईर्ष्या आदि का भी चित्रण किया है।

‘स्कन्दगुप्त’ प्रसाद के चरित्र-शिल्प का भव्य उदाहरण है। उसी के नाम से ही नाटक का नामकरण हुआ है। वही इस नाटक का नायक है। प्रसाद के युग तक आते-आते साहित्य में नायक की अवधारणा में पर्याप्त सीमा तक परिवर्तन और परिवर्धन हो चुका था। प्राचीन भारतीय साहित्य विधा के अनुसार नायकत्व के पद पर कोई उध्वकुलोद्भव व्यक्ति ही आसीन हो सकता था। किन्तु प्रसाद युग में ऐसे नाटकों का युग समाप्त होने लगा था और इस अवधि के अधिसंख्य नाटकों के नायक अपने उच्चासन से उतर कर जनसामान्य के निकट आने लगे थे। सामन्ती व्यवस्था के रहने से ऐसा अभ्यास होने लगा था कि नायक साधारण निम्न या मध्यम वर्ग से जुड़ा कोई भी व्यक्ति हो सकता है। अब उसके लिए कोई परंपरागत गुणों की आवश्यकता नहीं रही। दूसरी ओर पाश्चात्य ट्रेजेडियों के नायकों में भी हम जीवन संग्राम के उच्चतर मूल्यों की प्राप्ति और स्थापना के लिए पग-पग पर कष्ट सहन करते हुए तथा अनुदात्त शक्तियों के हाथों

टूटता-बिखरता पाते हैं। प्रसाद ने इन दोनों प्रकार की नाट्य पद्धतियों का अपनी कृतियों में यथास्थान समाहार किया है। यही कारण है कि उनके कुशल एवं कलात्मक साँचे में ढलकर जिस नायक ने भी अस्तित्व ग्रहण किया है वह अनेक प्रकार की श्रेष्ठ शक्तियों से युक्त होते हुए भी अपने अंदर से कहीं-न-कहीं टूटा हुआ, हारा थका और विरक्त तथा उदासीन भी रहा है चाहे वह मनु हो, चाहे चन्द्रगुप्त या स्कन्दगुप्त। इन सभी नायकों में स्वयं प्रसाद का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व भी घुलमिल कर एकाकार हो गया है। जहाँ तक स्कन्दगुप्त नाटक के नायकत्व का प्रश्न है, इसमें किसी प्रकार का विवाद नहीं है। स्कन्दगुप्त ही इस नाटक का नायक है। रंगमंच पर सबसे अधिक प्रभावशाली अधिकार स्कन्द का है। नाटक का आरम्भ स्कन्द के वार्तालाप से और समापन भी देवसेना के साथ उसी की बातचीत से होता है। नाटक के मध्य जितनी घटनाएँ हैं उसमें स्कन्द के कार्य सबसे अधिक बिखरे पड़े हैं। नाटक में दो विरोधी दल हैं। 1. सतपक्ष, 2. असत् पक्ष। स्कन्द का पक्ष सत का है, अनन्तदेवी का असत् का। स्कन्द विजयी होता है। इस दृष्टि से भी वह नायक है। नाटक का उद्देश्य अत्यन्त व्यापक और महान है। वह है आर्य साम्राज्य का उद्धार। इसका उद्धार कर्ता भी स्कन्दगुप्त है जिससे उसे ही नायक कह सकते हैं। स्कन्दगुप्त महान कर्मयोगी, वीर, धीर, दानी, निर्भीक, स्वावलम्बी तथा नाटक में समस्त आशाओं का केन्द्रबिन्दु हैं। भारतीय नाट्य विधान के अनुकूल वह धीरोदात्त नायक कहा जा सकता है।

स्कन्दगुप्त का चरित्र विभिन्न गुणों, स्वाभाविक दुर्बलताओं तथा व्यक्तिगत विचित्रताओं के ताने-बाने से बना गया है। नाटक के प्रारम्भ में ही उसकी उदासीन मुद्रा का परिचय मिल जाता है—‘अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है।’ स्पष्ट है कि स्कन्दगुप्त युवराज हो हुए भी अधिकार-लालसा से सर्वथा मुक्त है। सांसारिक वैभव, अप्रितम सौन्दर्य एवं राजसी उपकरणों के मध्य भी जल में कमलवत अलपति है। किन्तु उसका यह वैराग्य उसे अकर्मण्य नहीं बनाता। स्कन्दगुप्त में वीर के सभी लक्षण पुञ्जीभूत हैं। दूत के मुख से मालव पर हूणों के आक्रमण की सूचना पाकर मालवराज को अभयदान देता हुआ कहता है—‘शरणागत की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म है।—अकेला स्कन्दगुप्त मालव की रक्षा करने के लिए सन्नद्ध है। जाओ निर्भय निद्रा का सुख लो। स्कन्दगुप्त के जीते जी मालव का कुछ न बिगड़ सकेगा। इस दृढ़ निश्चय में कर्तव्य, ज्ञान, स्वावलम्बन और शौर्य प्रकट होता है। इस कर्तव्य की पूर्ति वह प्राण पण से करता है। उसका यही तेजस्वी रूप देखकर विजया कहती है—“अहा कैसी भयानक सुन्दर मूर्ति है।” संसार की महान वस्तु त्याग ही उसके जीवन का साध्य है। असीम पुरुषार्थ के साथ हृदयगत उदारता सोने में सुगन्ध है। स्कन्द की इसी विराग समन्वित वीरता और उदारता पर मुग्ध होकर बन्धुवर्मा भी कहता है—‘उदार वीर हृदय, देवोपम सौन्दर्य अन्तःकरण में तीव्र अभियान के साथ विराग है आँखों में एक जीवनपूर्ण ज्योति है।’

स्कन्द केवल आदर्श का ही नहीं मानव-मन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का भी पूज्य है। अधिकारों के प्रति उदासीनता तथा चरित्र की अत्यधिक चिन्तनशील प्रवृत्ति ही उसके चरित्र का सर्वप्रथम दोष है, जिसका लाभ विपक्षी उठाते हैं। डॉ. विश्वनाथ मिश्र का कथन—“उसके चरित्र में हैमलेट की भाँति अत्यधिक चिन्तनशीलता की घातक त्रुटि है और उसी को लेकर वह जीवन के दुःखमय अवसान की ओर अग्रसर होता है।”

प्रसाद ने जहाँ एक ओर स्कन्द के जीवन में राजनीतिक संघर्षों को प्रस्तुत किया है, वहाँ दूसरी ओर उसके व्यक्तित्व में प्रेम का संघर्ष भी प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम वह विजया की ओर आकर्षित होता है,

“यह कौन?” लेकिन विजया को भटार्क का वरण करते देख उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है। विजया की ओर से क्षुब्ध होने पर उसे प्रणय क्षितिज में एक नये नक्षत्र के रूप में देवसेना दिखाई देती है। श्मशान में मृत्यु के मुख में ही पड़ी देवसेना की रक्षा करता है। भयभीत देवसेना उसका आलिंगन करती है, देवसेना उसके प्रणय का केन्द्र बन जाती है। किन्तु यदि वह विजया के प्रति प्रेम-प्रदर्शन करता तो विजया कुमार की ओर उन्मुख होती। स्कन्द के अन्तःकरण में प्रेम और कर्तव्य का द्वन्द्व चलता रहता है इसीलिए उसे प्रेम के पल्लवन का अवसर नहीं मिल पाता। वह देवसेना से इसलिए प्रणय करना चाहता है कि बन्धुवर्मा ने राज्य देकर उसका उद्धार किया है। स्कन्द के शब्दों में ‘आज मैं बन्धुवर्मा की आत्मा को क्या उत्तर दूँगा?’ स्कन्द कोमल भावनाओं की पुंज है। इसलिए कुंभा के युद्ध में पराजित होने के पश्चात् देवसेना से प्रणय-याचना करता है और प्रणयी की भाँति अनुनय करता है—‘एकान्त में किसी कानन के कोने में, तुम्हें देखता हुआ जीवन व्यतीत करूँगा, साम्राज्य की इच्छा नहीं, एक बार कह दो।’ लेकिन देवसेना प्रतिदान नहीं लेना चाहती। अन्त में निराश होकर स्कन्द देवसेना की आत्मसमर्पण-दृढ़ता के सम्मुख अपनी कमजोरी का अनुभव करता हुआ कौमार्य जीवन बिताने का प्रण करता है। यह है उसके जीवन का दुःखान्त पक्ष। इस प्रकार सामाजिक क्षेत्र में सफल होकर भी व्यक्तिगत जीवन में असफल रहता है। स्कन्दगुप्त का अन्तिम कथन पाठकों के हृदय पर विषाद की लहर छोड़ता है—“जीवन के शेष दिन ... एक-दूसरे का मुँह काट लेंगे। ... परन्तु इस नन्दन की वसंतश्री इस अमरावती की शची, स्वर्ग की लक्ष्मी तुम चली जाओ, ऐसा मैं किस मुँह से कहूँ? (कुछ ठहरकर सोचते हुए) और किस वज्र कठोर हृदय से तुम्हें रोक्ूँ? देवसेना! तुम जाओ! हत भाग्य स्कन्दगुप्त, अकेला स्कन्द-ओह!”

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसाद ने स्कन्द के संघर्षपूर्ण बाह्य जीवन और घात-प्रतिघातों से संत्रस्त मानसिक जीवन में सन्तुलन स्थापित किया है। स्कन्द का बाह्य जीवन ऐतिहासिक सत्य है और उसकी आन्तरिक कथा, कवि-कल्पना। बाह्य राजनीतिक परिवर्तनों को स्कन्द संचालित करता है किन्तु आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्वों से वह कई दुर्बल क्षणों में विचलित हो जाता है। इतना होने पर भी प्रसाद का उदात्त पात्र स्कन्द नियति की ठोकरी से झुकता नहीं, अपितु एक निष्काम, निःस्वार्थ और सशक्त व्यक्तित्व के सदृश हृदय पर नियन्त्रण रखता है। स्कन्द प्रथमतः सैनिक है, फिर मानव। राष्ट्र उसका साधना क्षेत्र है, तो प्रेम उसका भावना क्षेत्र। इन दोनों में वह हिमालय सा अडिग रहता है। उसकी निर्मल जीवनधारा प्रबल तेजस्विनी नदी के सदृश दोनों कूलों को स्पर्श करके आगे बढ़ जाती है, किसी की होकर नहीं रहती। उस आर्य सम्राट की उदारता, त्याग, वीरता, कर्मशीलता ही प्रसाद का प्रतिपाद्य है।

इस प्रकार प्रसाद के नाटकों का सर्वोत्कृष्ट नायक स्कन्द गंभीर, भावुक, कल्पना-जीवी, दार्शनिक, अन्तर्मुखी वीर एवं प्रेमी नायक है।

**भटार्क** मगध का बलाधिकृत है। वह क्रूरता प्रतिहिंसा, अस्थिरता, अनुदारता तथा असहिष्णुता जैसे दुर्गुणों से ओत-प्रोत होते हुए भी सर्वथा नीच नहीं है। वह महत्वाकांक्षी अवश्य है। उसकी महत्वाकांक्षा सारे नैतिक मूल्यों और अन्तर्वैयक्तिक मानों को कुचलती हुई अपने साध्य को प्राप्त करने के लिए ध्वंसात्मक साधनों का उपयोग करती है, किन्तु बीच-बीच में उसका अन्तःकरण उसे रोकता-टोकता रहता है। उसका यह कथन—‘अपने कुकर्मों का फल चखने में कड़वा, परन्तु परिणाम में मधुर होता है’—उसके चरित्र का सही आत्मविश्लेषण करता है।

‘देवसेना’ प्रसाद की पात्र-सृष्टि की एक उज्वल मणि है। उसके चरित्र की सारी आलौकिकता, त्याग, देश प्रेम, सहिष्णुता और रहस्योन्मुखी भावनाएँ गंभीर्य से आच्छादित दिखाई पड़ती हैं। उसका चरित्र अपने ढंग का निराला है। जगत के व्यावहारिक जीव से उसमें भिन्नता है। उसकी विचारधारा ही कुछ ऊँची भूमिका पर बहती है। प्रत्येक स्थिति में निश्चिंत रहने वाली वह रमणी अपनी ऐकांतिक संपूर्णता में डूबी रहती है। उसके जीवन का आदर्श एकांत टीले पर, सब से अलग स्थित एक पारिजात वृक्ष के समान है। उसके व्यक्तित्व को समझने के लिए प्रथम तो ऐसे वृक्ष का अनुसन्धान आवश्यक है, फिर उस वृक्ष की सभी विभूतियों का विहार देवसेना में देखना होगा। उसके जीवन की ऐकांतिकता और निरालापन दुर्लभ है।

देवसेना की इस रहस्य भावना के मूल में हृदय-पक्ष की ही प्रधानता दिखाई पड़ती है। वह भावुकता की जीती जागती प्रतिमा है। गंभीर्य का योग पाकर यही भावुकता रहस्योन्मुख बन गई है और प्रेम के क्षेत्र में पहुँचकर यही संयम, त्याग और दृढ़ता का मंगलकारी स्वरूप खड़ा करती है। प्रथम अंक के अंतिम दृश्य में स्कन्दगुप्त को विजया की ओर आकृष्ट जानकर वह अनन्य प्रेमिका जाग सी पड़ती है। स्कन्द के प्रति उसका जो अनुराग आगे से चला आता है वह इस स्थल पर पहुँचकर संपूर्णतः चेतन बनकर उठता है। भौतिकता के स्थान पर आध्यात्मिकता आसन जमाती है। वह अब स्थूल को छोड़कर सूक्ष्म में आत्मसंतोष देखने लगती है। कुतूहल और रूप चमत्कार के कारण ही क्यों न हो यदि एक बार भी स्कन्द विजया की ओर खिंचता है तो देवसेना भावना से कर्तव्य को अधिक महत्त्वपूर्ण मानकर अपनी भौतिक लालसा को उस मार्ग से हटा लेती है। अपने प्रिय के सुख के लिए अपनी कोमलतम कामनाओं की आहुति दे देती है। इस मूक आत्मसमर्पण में देवत्व है। इस स्थल पर पहुँच कर देवसेना का रूप सामान्य मानव भूमि से ऊपर उठता दिखाई देता है। फिर भी उसके भीतर एक अजीब द्वन्द्व चल रहा है। जिस स्कन्द का प्रेम उसके अन्तर्जगत को स्वर्ग बना रहा है और उसके घोर मानसिक विप्लव का एकमात्र कारण है उसी स्कन्द को अपना सब कुछ देकर बदले में उससे कुछ भी लेना नहीं चाहती। केवल यही भावना कि “मैंने उन्हें प्यार किया है” उसके संपूर्ण जीवन के लिए अमृत है। इसके अतिरिक्त उसके भीतर कोई भौतिक कामना नहीं है। फिर भी इस स्थूल बिछोह में मचलन, पीड़ा, कराहट है जिसका नियंत्रण वह सदैव किया करती है। उसके कर्म और वचन से उसके हृदय की आँधी का आभास किसी को न लग जाए इसका कड़ाई से विचार करती रहती है। एक सच्चे कर्मनिष्ठ की भाँति वह निश्चय कर लेती है—‘कूलों में उफनकर बहनेवाली नदी, तुमुल तरंग, प्रचंड पवन और भयानक वर्षा, परन्तु उसमें भी नाव चलानी ही होगी।’ इस निश्चय में विवशता एवं करुणा के साथ निर्लिप्त उत्साह का अद्भुत सम्मिश्रण है। जब स्कन्दगुप्त एकान्त में किसी कानन के कोने में देवसेना को देखते हुए जीवन व्यतीत करने की अभिलाषा प्रकट करता है तो देवसेना प्रत्युत्तर में कहती है—“आपको अकर्मण्य बनाने के लिए देवसेना जीवित न रहेगी। सम्राट क्षमा हो। इस हृदय में .... आह!। कहना ही पड़ा, स्कन्दगुप्त को छोड़कर न तो कोई दूसरा आया, और न वह जाएगा। अभिमानी भक्त के समान निष्काम होकर मुझे उसी की उपासना करने दीजिए। उसे कामना के भँवर में फँसा कर कलुषित न कीजिए। मैं आप की ही हूँ, मैंने अपने को दे दिया है। अब उसके बदले में कुछ लिया नहीं चाहती।” आँखे मूँदे वर्षों जिसकी आराधना करती है—आँख खुलते ही जब सबसे पहले दृष्टि स्कन्द पर ही पड़ती है तो वह अमर कैसे न होता! पर अभागी देवसेना

की सुन्दर कल्पना का नीड़ स्कन्दगुप्त उसकी आराधना की वस्तु ही बना रहता है। उसका प्रेम स्थूल रूप को त्याग सूक्ष्म रूप में समाहित हो जाता है।

मर्यादा और आत्मसम्मान प्रिय होने के कारण अथवा दृढ़वत और गंभीर होने के कारण देवसेना का बाह्य रूप भले ही कुछ कठोर हो गया है परन्तु भीतर प्रेम की मधुर भावना ने हृदय को रमणीय रूप दे रखा है। बाहर तो अवश्य ही नियंत्रण और संयम से भरे उक्त शब्द कहती है परन्तु भीतर कामना का मधुर उच्छ्वास रह-रहकर सिर उठाता रहा। बाहर भले ही देवता का रूप बनाये रहती है परन्तु भीतर मानव भावनाएँ भी तरंगित होती रहती हैं। द्वन्द्व का यही रूप देवसेना के व्यक्तित्व का प्राण है—“हृदय की कोमल कल्पना सो जा। जीवन में जिसकी संभावना नहीं, जिसे द्वार पर आए हुए लौटा दिया था, उसके लिए पुकार मचाना क्या तेरे लिए अच्छी बात है।” इस पुकार मचाने में जो सुन्दर और प्रकृत मानव है वह उसे पाषाण देवी होने से बचा लेता है।

प्रेम के प्रति नैराश्य भावना होते हुए भी देवसेना ने सामाजिक हित की उपेक्षा नहीं की, वरन् स्वदेश भक्ति से अनुप्राणित होकर हमारे सामने आती है। हूणों के आक्रमण के समय छुरी लेकर आत्मरक्षा करने के लिए सन्नद्ध हो जाती है। विलास और नीच वासना से भ्रष्ट साधारण जन भी उसका कुरुचिपूर्ण व्यंग्य, बोलते और परिहास करते हैं। फिर भी वह सहिष्णुता की परुकाष्ठा ही दिखाकर रह जाती है। नीचों की बातों की तनिक भी परवाह नहीं करती। भले ही पर्णदत्त उसकी यह दशा देखकर क्रुद्ध होता है। क्रुद्ध पर्णदत्त को समझाते हुए कहती है—‘क्या है बाबा! क्यों चिढ़ रहे हो जाने दो, जिसने नहीं दिया, उसने अपना, कुछ तुम्हारा तो नहीं ले गया।’ इस घोर सन्तोष और पवित्र सहिष्णुता के मूल में देशप्रेम है।

देवसेना का चरित्र एक करुणा भीगी सिहरन के समान है, उसकी अनुभूति पूरे नाटक में रह-रहकर होती रहती है। प्रसाद की करुणा देवसेना के चरित्र में घनीभूत होकर उस समय प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँचती है जब स्कन्द कहता है—“इस नन्दन की वसन्त श्री, इस अमरावती की शची,.....तुम चली जाओ—ऐसा मैं किस मुँह से कहूँ और किस वज्र कठोर हृदय से तुम्हें रोकूँ? देवसेना! तुम जाओ! हतभाग्य स्कन्दगुप्त अकेला स्कन्द, ओह!” स्कन्दगुप्त से अन्तिम विदाई लेते हुए उस जीवन में इस जीवन की प्यास बुझाने की कामना करती हुई देवसेना कहती है—“कष्ट हृदय की कसौटी है तपस्या अग्नि है.....मेरे इस जीवन के देवता और उस जीवन के प्राप्य! क्षमा!.....” देवसेना के इस कथन में करुणा सजीव हो उठी है यहाँ प्रसाद की देवसेना अतृप्त कामनाओं के कटुरस का पान करने का बलपूर्वक प्रयत्न करती हुई वर्षा के बाद निकली हुई धूप सी करुण और आर्द्र दिखाई देती है। अतः डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में हम असंदिग्ध रूप से कह सकते हैं कि ऐतिहासिक नाटकों की सर्वोत्तम नायिका देवसेना प्रसाद की चरित्र सृष्टि की कोमल कल्पना की अमर उपज है।

देवसेना के चरित्र के विषय में सत्य ही लिखा है कि—‘इस में करुणा की कोमल स्मिति रेखा है—भय का अट्टहास नहीं।’

**विजया** आत्मकेन्द्रित, दुर्बल, भावुकतापूर्ण और प्रतिक्रियावादी नारी है, किन्तु उसके भी चित्त के किसी-न-किसी कोने में सद्वृत्ति अवश्य व्याप्त रहती है। देवसेना को श्मशान में बलि हेतु ले जाते समय वह कुछ क्षणों के लिए अवश्य सोचती है कि वह जो कुछ करने जा रही है, वह अनुचित है—‘भाव विभोर दूर की रागिनी सुनती हुई यह कुंगी-सी कुमारी.....आह! कैसा भोला मुखड़ा।’ दुविधा और विरोधाभास में



डूबा हुआ उसका व्यक्तित्व अपने उद्देश्यों में विफल हो जाता है। अन्त में वह पश्चात्ताप की अग्नि में जलकर आत्महत्या करके अपने प्राणों की बलि देती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'स्कन्दगुप्त' नाटक के पुरुष और नारी-पात्र अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के अतिरिक्त वर्गगत विशेषताएँ भी लिए हुए हैं। एक ओर स्कन्दगुप्त की वैराग्य-भावना, सांसारिकता के प्रति उदासीनता का परिचय प्रथम दृश्य में ही दे दिया गया है—'अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है' तो दूसरी ओर उसकी दायित्व के प्रति सजगता एवं कर्तव्य भावना भी यहीं प्रकट हो जाती है—'हम तो साम्राज्य के एक सैनिक हैं।' प्रसाद जी के चरित्र-चित्रण-कला की यह एक अनुपम विशेषता है कि वे प्रथम परिचय में ही पाठक को उसकी वर्गगत विशेषताएँ बता देते हैं।

प्रसाद जी ने अपने आदर्श पात्र के उज्वल गुणों को विपक्षी पात्रों के घोर दुर्गुणों के वैषम्य में दिखाकर अधिक निखार दिया है। स्कन्दगुप्त का चरित्र भटार्क, शर्वनाग, पुरगुप्त आदि दुष्ट पात्रों की दुर्बलताओं के कारण ही अधिक ऊँचा उठ गया है। दूसरी ओर विजया और अनंतदेवी के अनुदारता, कर्तव्यनिष्ठा, महत्त्वकांक्षा की भूख, असहिष्णुता तथा प्रतिहिंसा जैसे दुर्गुणों की उपस्थिति में ही देवसेना के त्याग, कर्तव्यनिष्ठा, संयम, प्रेम आदि गुणों ने भव्यतर रूप धारण किया है। यह भी उनकी कला की एक विशेषता है।

वस्तुतः प्रसाद को नारी-जीवन के चरित्रांकन में विशेष सफलता प्राप्त हुई है। श्री हरप्रसाद शास्त्री के शब्दों में यों तो प्रसाद ने अपनी सभी पात्रों का सवाक् एवं सरूप चित्रण किया है, किन्तु नारी चित्रांकन में उन्हें सर्वाधिक सफलता मिली है। उनकी नारी भावुक भी है, स्नेह करना भी जानती है और उस स्नेह के लिए बड़े से बड़ा त्याग करना भी जानती है। उसका प्रेम विषय-वासनाओं की उद्दीप्ति तक ही सीमित नहीं रहता, वरन् त्याग और बलिदान की ऊँची सीढ़ी पर चढ़कर मानव का पथ-प्रदर्शक बनता है। स्कन्दगुप्त की लगभग सभी नारियाँ संवेदनशील प्रेमिकाएँ हैं, परन्तु प्रेम के उदय में हर एक की अपनी जीवन-स्थिति है जो अपने समय की राष्ट्रीय गतिविधियों से जुड़ी है। रोमांटिक होते हुए भी अपने परिवेश में सक्रिय होने के कारण उनके व्यक्तित्व को नयी अर्थवत्ता मिली है। यह युगीन भाव है, और इससे नाटक में खुलापन और ताजगी आ गई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त' नाटक सफल है। प्रसाद ने पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व चित्रण और घटनाओं के घात-प्रतिघात से होने वाले चरित्र-विकास की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है।

## संवाद

संवाद अथवा कथोपकथन नाटक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व और उसकी मूलभूत विशिष्टता का द्योतक है। डॉ. रघुवंश ने अपनी समीक्षात्मक कृति 'नाट्यकला' में लिखा है कि "वस्तु की घटनात्मक योजना और पात्रों के चारित्रिक विकास के बाद हमारे सम्मुख रचना का दूसरा स्तर आता है जिसका संबंध अभिव्यक्ति से है और अभिनय का आधार है। कवि या रचयिता का भाव या विचार सभी उसकी अभिव्यक्ति के द्वारा ही प्रेक्षक की अनुमति का विषय होता है। अभिव्यक्ति के उपकरणों में उसके पास भाषा अपनी सजीव शक्ति के साथ है। नाटक में भाषा की यह अभिव्यक्ति कथोपकथन के विभिन्न रूपों में ही प्रस्तुत होती है। जिस व्यक्तिगत प्रतिभा के द्वारा वह उसका प्रयोग करता है, वह उसकी निजी शैली

के अन्तर्गत आता है। नाटक के जीवन का विकास घटना और चरित्र के द्वारा होता है और उसका अधिकांश रूप हमारे सम्मुख अभिनय के साथ कथोपकथन में ही आता है।” प्रायः प्रसाद के संवादों पर अभिनय और क्लिष्ट होने के साथ-साथ परिस्थिति तथा पात्र के अनुकूल न होने का आरोप लगाया जाता है। उनके संवादों में बोलचाल की भाषा की रंगत न होने के कारण भाषा का लचीलापन नजर नहीं आता। फिर भी जिस युग के वे नाटक हैं और जैसा उनका वातावरण है उसको देखते हुए प्रसाद की प्रतिभा को नकारा नहीं जा सकता। उनके संवादों में स्वच्छन्दतावादी नाटकों के संवादों की सारी विशेषताएँ निहित हैं। जहाँ तक संवादों की उपयुक्तता का प्रश्न है, वह इस बात पर निर्भर करती है कि कथोपकथन संक्षिप्त हों, पात्रानुकूल हों, सरल भाषा में हों और भावावेश में काव्यात्मक न हों। साथ ही कथोपकथनों की योजना इस ढंग से होनी चाहिए कि कथासूत्र आगे बढ़ता चले और पात्र का चरित्र प्रस्फुटित होता चले।

जहाँ तक कथा-सूत्र को आगे बढ़ाने का संबंध है स्कन्दगुप्त के कथोपकथन कथानक को गति प्रदान करने में अवश्य सहायक सिद्ध हुए हैं और उसके द्वारा हमें उनके विगत व भावी घटनाओं की जानकारी भी हो जाती है। एक बात से दूसरी और दूसरी से तीसरी बात स्वयंमेव फूटती चली जाती है—“**प्रमाण! प्रमाण अभी खोजना है? आँधी आने के पहले आकाश जिस तरह स्तम्भित हो जाता है, बिजली गिरने से पूर्व जिस प्रकार नील कादम्बिनी का मनोहर आवरण महाशून्य पर चढ़ जाता है क्या वैसी ही दशा-गुप्त साम्राज्य की नहीं है?**” इन संवादों से गुप्त साम्राज्य की तत्कालीन स्थिति का पता चलता है। इसके पश्चात् मालव-दूत जब आक्रान्ताओं की ओर से नई विपत्तियों की सूचना देता है तो स्कन्द उसे आश्वासन देता है—‘**अकेला स्कन्दगुप्त मालव की रक्षा के लिए सन्नद्ध है। जाओ, निर्भय निद्रा का सुख लो। स्कन्दगुप्त के जीते जी मालव का कुछ नहीं बिगड़ सकेगा।**’ स्कन्द का यह आश्वासन आगामी घटनाओं की ओर संकेत करता है।

‘प्रसाद’ जी ने संवादों की सहायता से पात्रों के चरित्र विकास की भी सुन्दर व्यंजना की है। कभी स्वयं के कथन द्वारा, कभी अन्य पात्र के साथ वार्तालाप के द्वारा, कभी अनुपस्थित पात्र के बारे में अन्य पात्रों की बातचीत द्वारा पात्रों के चरित्र का उद्घाटन होता है। स्कन्दगुप्त और दूत के निम्नलिखित वार्तालाप में—

**स्कन्दगुप्त**—दूत! केवल सन्धि-नियम ही से हम लोग बाध्य नहीं हैं किन्तु शरणागत की रक्षा भी क्षत्रियों का धर्म है.....जाओ, निर्भय निद्रा का सुख लो। स्कन्दगुप्त के जीते जी मालव का कुछ न बिगड़ सकेगा।

**दूत**—धन्य युवराज! आर्य साम्राज्य के भावी शासक के उपर्युक्त ही यह बात है।

दूत की वाक्चातुरी, पर्णदत्त की गम्भीरता और स्कन्दगुप्त की क्षत्रियोचित शरणागत-वत्सलता का स्पष्ट परिचय मिल जाता है।

कथोपकथन की स्वाभाविकता के लिए यह आवश्यक है कि पात्र-विशेष के वर्ग, संस्कार आदि को ध्यान में रखा जाय। प्रसाद जी ने चरित्र-प्रकाशक कथोपकथन में इस दृष्टिकोण को सदैव सामने रखा है। किन्तु संवाद पात्रानुकूल नहीं है। क्योंकि अनुभूति की प्रामाणिकता और कथ्य की विपुल गहनता प्रसाद के नाटकीय संवादों को काव्यमय संस्कार करने को बाध्य करती है। इसके साथ ही पात्रों का काव्यमय व्यक्तित्व भी उसके लिए कम उत्तरदायी नहीं है। अनेक पात्र प्रसाद की काव्यात्मक दार्शनिक अनुभूति की

देन होने के नाते प्रायः कवि की भाषा बोलते हैं और मरुस्थल के समान बाहर से शुष्क होने पर भी उनकी परिस्थितिजन्य भावुकता संयम के अवरोध को तोड़कर अन्तःसलिला की तरह बह निकलती है। मातृगुप्त काव्यमय-प्रलाप करता हुआ कहता है—“उस हिमालय के ऊपर प्रभातसूर्य की सुनहरी प्रभा से आलोकित प्रभा का, पीले पोखराज का-सा एक महल था, उसी से नवनीत की पुतली झाँककर विश्व को देखती थी। वह हिम की शीतलता से सुसंगठित थी। सुनहरी किरणों को जलन हुई। तप्त होकर महल को जला दिया। पुतली! उसका मंगल हो, हमारे अश्रु की शीतलता उसे सुरक्षित रखे। कल्पना की भाषा के पंख गिर जाते हैं, उसे मौन नीड़ में निवास करने दो।” इसी प्रकार के जो पात्र परिस्थितिवश आवश्यकता से अधिक मुखर हैं, वे हृदय की तीव्र प्रतिक्रियाओं से ओत-प्रोत होने के कारण एक अपूर्ण रोमांस से ग्रस्त हैं और वे या तो दर्शन झाड़ने लगते हैं या काव्यमयी कल्पना से मुखर हो उठते हैं। समस्त ईहा और आहत अहं के बीच जीने वाले ये पात्र अपने अतीत के विकारों का स्मरण, भविष्य के स्वप्नों का कथन तथा वर्तमान के संघर्ष की अभिव्यक्ति अद्भुत आवेशपूर्ण शब्दावली में करते हैं। अदम्य आवेग में वे ऐसा बहुत कुछ कह जाते हैं जिसका उद्देश्य रागात्मक वृत्तियों को दोष देना मात्र है। देवसेना कहती है—“हृदय की कोमल! सो जा। जीवन में जिसकी सम्भावना नहीं, जिसने द्वार पर आये हुए को लौटा दिया था, उसके लिए पुकार मचाना क्या तेरे लिए कोई अच्छी बात है? आज जीवन के भावी सुख, आशा और आकांक्षा-सबसे मैं विदा लेती हूँ।” वस्तुतः प्रसाद के पात्र भावना का जीवन जीते हैं और यथार्थ की अपेक्षा असाधारण क्षणों को वाणी देने में व्यस्त दिखाई देते हैं।

‘स्कन्दगुप्त’ में प्रसाद ने संक्षिप्त संवादों द्वारा परिस्थिति का बड़ा ही सजीव चित्र उपस्थित किया है। किन्तु संक्षिप्तता का अर्थ कथनों का केवल छोटा होना ही नहीं वरन् उसमें आये हुए भावों की सुबद्धता भी है। किन्तु आलोच्य नाटक के संवाद अधिक लम्बे हो गये हैं। विजया व अनन्तदेवी के वार्तालाप अपनी दीर्घता के कारण रोचकता का हास-सा कर देते हैं। कुछ कथन सुन्दर और चमत्कारपूर्ण भी हैं। निम्न उद्धरणों में देखिए —

**भटार्क**—कौन?

**शर्वनाग**—नायक शर्वनाग।

**भटार्क**—कितने सैनिक हैं?

**शर्व**—पूरा एक गुल्म।

**भटार्क**—अंतःपुर से कोई आज्ञा मिली है?

**शर्व**—नहीं।

**भटार्क**—तुमको मेरे साथ चलना होगा।

**शर्व**—मैं प्रसन्न हूँ, कहाँ चलूँ?

**भटार्क**—महादेवी के द्वार पर।

**शर्व**—वहाँ मेरा क्या कर्तव्य होगा।

**भटार्क**—कोई न तो भीतर जाने पावे और न भीतर से बाहर आने पावे।

**शर्व**—(चौककर) इसका तात्पर्य?

**भटार्क**—(गम्भीरता से) तुमको महाबलाधिकृत की आज्ञा-पालन करनी चाहिए।

**शर्व**—तब भी क्या स्वयं महादेवी पर नियंत्रण रखना होगा।

**भटार्क**—हाँ।

**शर्व**—ऐसा।

**भटार्क**—ऐसा ही।

इस प्रकार दर्शन, चिन्तन, द्वन्द्व तथा मनोभावों की अभिव्यक्ति में चाहे स्कन्दगुप्त के संवाद बोझिल हो गए हैं किन्तु उन्हें अनाटकीय लच्छेदार अथवा गद्य-काव्य जैसा कहकर नकारना उचित है। वस्तुतः वे अपने सम्पूर्ण नाटकीय और रंगमंचीय दायित्व का निर्वाह करते हैं। वे प्रसाद की भाषिक क्षमता और नाट्य कौशल दोनों का परिचय देते हैं।

### **भाषा-रचना**

नाटक में अभिव्यक्ति का माध्यम संवाद है और भाषा-शैली संवादों के रूप का महत्त्वपूर्ण अवयव है। प्रसाद की नाटकीय भाषा-शैली सर्वदा विवादास्पद रही है और उसके पक्ष-विपक्ष में अलग-अलग मत व्यक्त किए जाते हैं। स्वयं प्रसाद का मत है कि “भिन्न-भिन्न देश और वर्गवालों से उनके देश और वर्ग के अनुसार भाषा का प्रयोग कराने से नाटक को भाषाओं का अजायबघर बनाना पड़ता है जो कहीं अधिक अप्राकृतिक हो जाता है और सामाजिकों के लिए भी इतनी भाषाओं से परिचय रखना असम्भव है। इसके अतिरिक्त इस विषय की अधिक आवश्यकता भी नहीं दिखाई पड़ती। न जाने कितने विदेशियों को हम अपनी ही तरह हिन्दी बोलते-समझते पाते हैं। जहाँ भावुकता और कल्पना के बल पर हम इतने बड़े अभिनय को नकल और अभिनय न समझकर सच्ची घटना मानते हैं और उसी के साथ हँसते-रोते, सुख-दुःख का अनुभव करते हैं वहाँ ऐसी बात यथार्थ है अथवा अयथार्थ इसके विचार का अवसर ही कहाँ रह जाता है। जब हम सिल्यूकस और कार्नेलिया को अपने सम्मुख खड़ा देखते हैं तब वे यथार्थ मालूम पड़ते हैं और जब वे परिष्कृत भाषा का प्रयोग करने लगते हैं तब अयथार्थ हो जाते हैं यह भी कोई तर्क है। अतएव भाषा-विविधता के लिए आग्रह न करना ही हितकर है। स्वरूप-भिन्नता केवल वेश-भूषा से ही व्यक्त कर देना चाहिए।” इसी प्रकार अपने ‘रंगमंच’ शीर्षक निबन्ध में भी उन्होंने कहा है—“मैं तो कहूँगा कि सरलता और क्लिष्टता पात्रों के भावों और विचारों के अनुसार भाषा का प्रयोग नाटकों में होना चाहिए, किन्तु इसके लिए भाषा की एकतन्त्रता नष्ट करके कई तरह की खिचड़ी भाषाओं का प्रयोग हिन्दी नाटकों के लिए ठीक नहीं। पात्रों की संस्कृति के अनुसार उनके भावों और विचारों के ही आधार पर भाषा का प्रयोग नाटकों में होना चाहिए। पात्रों की संस्कृति के अनुसार उनके भावों और विचार में तारतम्य होना भाषाओं के परिवर्तन से अधिक उपयुक्त होगा। देश और काल के अनुसार भी सांस्कृतिक दृष्टि से भाषा में पूर्ण अभिव्यक्ति होनी चाहिए।”

उक्त दृष्टिकोण के आधार पर जब हम ‘स्कन्दगुप्त’ की भाषा-शैली पर विचार करते हैं तो देखते हैं कि इसकी कथावस्तु अतीतमुखी है इसीलिए उसी के अनुरूप ही भाषा-शैली का प्रयोग हुआ है। ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण के लिए यह अनिवार्य भी था। उन्होंने विषय के अनुरूप ही सामान्त्युगीन

सामाजिक, सांस्कृतिक तथा पारिभाषिक शब्दावली ग्रहण की। चूँकि प्रसाद जी को संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन था अतः 'स्कन्दगुप्त' में स्वाभाविक ही संस्कृत की तत्सम शैली का प्रयोग हुआ है—'तुम लोग संदर्भ के अभिशाप की लीला देखोगे, है आँखों में इतना बल? क्यों समझ लिया था कि इन मुण्डित-मस्तक जीर्ण कलेवर भिक्षु-कंकालों में क्या धरा है। देखो-शव-चिता में नृत्य करती हुई तारा का तांडव नृत्य-शून्य सर्वनाशकारिणी की-मुण्डमालाओं की कंदुक क्रीड़ा! अश्वमेध हो चुके फलस्वरूप महा नरमेष का उपसंहार भी देखो।' प्रसाद का एक-एक शब्द उनके चिंतन और मनन को प्रकट करता है और उसके पीछे प्राचीन भारत की समूची संस्कृति और परम्परा बोलती दिखाई देती है। इतिहास को समझे बिना प्रसाद के नाटकों में प्रयुक्त शब्दों, अनुभूतियों और विचारों का आस्वादन सम्भव नहीं है। इस प्रकार 'स्कन्दगुप्त' की भाषा को दुरूह नहीं कहा जा सकता और उसमें ओज, प्रसाद व माधुर्य नामक तीनों ही गुण दृष्टिगोचर होते हैं।

'स्कन्दगुप्त' में प्रयुक्त ओजगुण युक्त शैली अत्यन्त प्रभावशाली है। कमला ओजमयी भाषा में स्कन्द को सक्रिय होने को प्रोत्साहित करती है—“कौन कहता है तुम अकेले हो?...उठो स्कन्द! आसुरी वृत्तियों का नाश करो, सोने वालों को जगाओ और रोने बालों को हँसाओ। आर्यावर्त तुम्हारे साथ होगा और उस आर्य पताका के नीचे समग्र विश्व होगा।” कथावस्तु की जटिलता, दार्शनिक विचारधारा की प्रधानता व संस्कृत की गहनता के कारण स्कन्दगुप्त में प्रसाद गुण अधिक नहीं है पर कुछ स्थलों पर उसके भी दर्शन हो जाते हैं जैसे—“फिर मेरे सामने वही समस्या। आज तो स्कन्दगुप्त सम्राट नहीं है, प्रतिहिंसे सो जा। क्या कहा! नहीं देवसेना ने एक बार मूल्य देकर खरीदा था, परन्तु विजया भी एक बार वही करेगी।” स्कन्दगुप्त की भाषा में कहीं-कहीं मधुरता भी है और अनुभूतियों की मोहकता व सुकुमारता की अभिव्यक्ति के समय माधुर्य गुण का भी समावेश हुआ है—“हृदय की कोमल कल्पना! सो जा। जीवन में जिसका सम्भावना नहीं, जिसे द्वार पर आए हुए लौटा दिया था, उसके लिए पुकार मचाना क्या तेरे लिए कोई अच्छी बात है।” कुल मिलाकर प्रसाद में मधुवेष्टन, अर्थ-गाम्भीर्य और आभिजात्य गरिमा सबसे अधिक मिलती है। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में, “मधुमयी प्रतिभा के धनी प्रसाद ने मधु को आर्ष अर्थ में व्यापकता के साथ स्वीकार किया है। मधु उनके आनन्दवादी दर्शन का, अविच्छिन्न कल्पना का अंग है। जीवन की कटुता और छलना के बिंधे हुए भावुक हृदय के लिए मधु ही स्वाभाविक है। निराला में खुले संघर्षों और रूढ़ि के प्रहरों का दर्द है, प्रसाद की तरह आत्मीयों की प्रतारणा का नहीं। यही कटुता मधुमय कल्पना और मधुर पदावली की जननी है।”

'प्रसाद' के गद्य में भी काव्य की भाँति अलंकरण, चित्र-विधान, प्रतीक तत्त्व आदि प्रवृत्तियाँ स्वयं ही समाहित हो गई हैं। प्रसाद के नाटकों की कथावस्तु ऐतिहासिक है। इतिहास पाठक के मानस में एक ऐसे मिथक रूप में अपना प्रसार करता है जो स्वयं ही वर्तमान और अतीत के बीच भावना के सेतु बनकर काव्यात्मक तथा रोमान्सयुक्त बन जाता है। प्रसाद के नाटक पुरातन शौर्य, प्रणय, त्याग और त्रासद नियति से सम्बद्ध होने के कारण कथ्य और भाषिक माध्यम दोनों में एक विचित्र काव्यात्मक वातावरण का सृजन करते हैं। स्कन्दगुप्त में भी उनके कवि-हृदय की काव्योचित रोचकता एवं लाक्षणिकता देखते ही बनती है। प्रकृति के मानवीकरण का एक सजीव चित्र प्रस्तुत है—“अमृत के सरोवर में स्वर्ण कमल खिल रहा था, भ्रमर बंशी बजा रहा था, सौरभ और पराग की चहल-पहल थी। सवेरे सूर्य की किरणें उसे

चूमने को लौटती थीं, संध्या में शीतल चांदनी उसे अपनी चादर से ढक लेती थी। उस मधुर सौंदर्य उस अतीन्द्रिय जगत को साकार कल्पना की ओर मैंने हाथ बढ़ाया था, वहीं स्वप्न टूट गया।” नाटककार छायावादी प्रयोगों से नाटक की भाषा को बचा नहीं पाया है। नवीन उपमानों का संग्रहण हुआ है। प्रभाव और ध्वन्यात्मकता की दृष्टि से भी भाषा सशक्त है—‘आलस्य सिंधु में शेष-पर्यकशायी सुषुप्ति नाथ जागेंगे, सिन्धु में हलचल होगी। रत्नाकर से रत्न राजियाँ आर्यवर्त की बेला भूमि पर निछावर होगी।’

इन्हीं काव्यात्मक प्रवृत्तियों के कारण प्रसाद के नाटकों की भाषा को अनाटकीय मान लिया जाता है। किन्तु ऐसी काव्यात्मकता को भाषा का दोष नहीं माना जा सकता यदि उसमें नाटकीयता हो। नाटक के लिए काव्य की भाँति ही अनुभूति आवश्यक होती है। प्रसाद ने अपने नाटकों में जीवन को काव्य के स्तर तक ऊपर उठाया था और उनमें दृश्य-काव्य की संज्ञा को चरितार्थ किया था। इसका प्रभाव उनकी भाषा पर पड़ना भी अनिवार्य था। इसीलिए ऐतिहासिक वातावरण के साथ युग की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए इस भाषा में सभी वाञ्छित उपकरण मिल जाते हैं। प्रसाद की नाट्य-भाषा की आलोचना करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि नाटक की विषय-वस्तु और उसकी भाषा दो अलग-अलग वस्तुएँ नहीं होतीं।

‘स्कन्दगुप्त’ की भाषा नितान्त काव्यात्मक ही नहीं है। काव्यात्मकता के अतिरिक्त भी उनके अनेक रंग देखने को मिलते हैं। मुख्य रूप से प्रसाद की भाषा को इन वर्गों में बाँटा जा सकता है, (1) काव्यमय भाषा, (2) चिन्तन की भाषा, (3) विवरण की भाषा, (4) हास्यव्यंग्युक्त भाषा और (5) तनावपूर्ण भाषा। काव्यमय भाषा ही चिन्तन और अनुभूति की भाषा है। अनुभूति की यह काव्यमयी भाषा सर्वत्र दुरूह और जटिल ही नहीं है बल्कि उसका सरल, सजीव, सुगठित और आडम्बरहीन रूप भी देखने को मिलता है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ‘स्कन्दगुप्त’ की भाषा का स्वर दृढ़ है और गुणत्रय-माधुर्य, ओज तथा प्रसाद-समन्वित है।

## रस योजना

‘प्रसाद’ के नाटक रसाश्रयी हैं। उन्होंने जहाँ एक ओर पाश्चात्य एवं नवीन नाट्य-कला सम्बन्धी दृष्टिकोणों को अपनाया है वहाँ उन्होंने प्राचीन भारतीय रसवादी विचारधारा को भी प्रमुख स्थान दिया है। रस के सम्बन्ध में उनका आग्रह स्पष्ट था। उनके अनुसार, “जैसे विश्व के भीतर विश्वात्मा की अभिव्यक्ति होती है, उसी तरह नाटकों में रस की।” नाटक दृश्यकाव्य होता है जिसका प्रमुख उद्देश्य सामाजिक (दर्शक) के हृदय में रस परिपाक करना होता है। इसलिए उन्होंने अपने नाटकों में अनेक रसों की स्थिति स्वीकार की है।

नाट्यशास्त्र के नियमानुसार ‘स्कन्दगुप्त’ का अंगीरस **वीर** है। यद्यपि स्कन्दगुप्त का आरम्भ और पर्यवसान शान्त रस में ही होता है पर प्रधानता युद्ध वीरता और त्याग को ही प्राप्त हुई है। नायक का उद्देश्य राष्ट्र को आक्रमणकारियों से मुक्ति दिलाकर बाहरी और भीतरी शान्ति स्थापित करना है। स्कन्द का मालवदूत को आश्वासन, मालवा में पुष्यमित्रों पर विजय एवं राज्यारोहण, मालवा और मगध की सम्मिलित सेना का हूणों से युद्ध, पराजय, पुनर्संगठन एवं विजय आदि कथावस्तु की प्रधान घटनाओं की दृष्टि से भी नाटक का प्रधान रस वीर ही सिद्ध होता है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। स्कन्द के चरित्र में यह

भाव अत्यन्त ही उज्ज्वल हो उठा है—‘दूत.....शरणागत रक्षा भी क्षत्रिय धर्म है.....अकेला स्कन्दगुप्त मालव की रक्षा करने के लिए सन्नद्ध है। स्कन्द के उत्साह के लिए अन्तःकलह के उत्पादक भटार्क और अनन्तदेवी और राष्ट्र के शत्रु पुष्यमित्र, शक तथा हूण ही आलम्बन हैं। स्वयं स्कन्द जो उत्साह का केन्द्र है, आश्रय है, बन्धुवर्मा भी आश्रय है। उद्दीपन है—भटार्क और अनन्तदेवी के कुचक्र। विद्रोहियों, युद्ध-बन्धियों को क्षमा प्रदान करना आदि अनुभाव है। स्कन्द और बन्धुवर्मा का धैर्य, चिन्ता, विषाद, औत्सुक्य, गर्व, ग्लानि आदि संचारी हैं। अतः वीर रस के समस्त उपादानों का संयोग ‘स्कन्दगुप्त’ में स्वतः उपस्थित हो गया है। नाटक के अन्त में युद्ध और दानवीरता की जो अन्विति दिखाई पड़ती है वही रस-दसा का परमोत्कर्ष है। जिस राष्ट्र को निरापद बनाने में स्कन्द ने अपना सम्पूर्ण जीवन उत्सर्ग कर दिया था उसे एक क्षण में पुरुगुप्त को दान कर दिया। इस महात्याग का प्रेरक भी प्रधानता: उत्साह ही है। इस प्रकार नाटक का अंगीरस वीर रस ही है।

‘स्कन्दगुप्त’ नाटक में यद्यपि शृंगार-रस का समावेश है, किन्तु उसकी प्रधानता नहीं है। स्कन्द का मूल उद्देश्य भारत को विद्रोहियों एवं आक्रमणकारियों से निरापद करना है न कि देवसेना की प्राप्ति। भले ही विजया देवसेना दोनों ही स्कन्दगुप्त की और आकृष्ट होती है। किन्तु विजया का प्रेम ‘प्रेम’ न होकर प्रेम का आडम्बर मात्र है। दूसरी ओर देवसेना का प्रेम आदर्श है पर उसका स्वाभिमान उसके क्षत्रियत्व का द्योतक है और उसकी कोमल भावना को दुर्बल नहीं बनने देता। जब स्कन्द देवसेना से अनुनय करता है—“एकान्त में किसी कानन के कोने में, तुम्हें देखता हुआ, जीवन व्यतीत करूँगा। साम्राज्य की इच्छा नहीं—एक बार कह दो।” तब देवसेना कहती है—“तब तो और भी नहीं? मालव का महत्त्व तो रहेगा ही....आपको अकर्मण्य बनाने के लिए देवसेना जीवित न रहेगी। सम्राट, क्षमा हो। इस हृदय में...आह! कहना ही पड़ा, स्कन्दगुप्त को छोड़कर न तो कोई दूसरा आया और न वह जाएगा। अभिमानी भक्त के समान निष्काम होकर मुझे उसी की उपासना करने दीजिए उसे कामना के भँवर में फँसाकर कलुषित न कीजिए। नाथ! मैं आपकी ही हूँ, मैंने अपने को दे दिया है। अब उसके बदले कुछ लेना नहीं चाहती।” स्कन्द उत्तर देता है—“तुम्हारी विजय हुई। आज से मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं कुमार जीवन ही व्यतीत करूँगा।” इस प्रकार प्रेम की परिणति त्याग में हो जाती है। नाटक में रतिभाव पूर्ण रूप में प्रबुद्ध नहीं हो पाता, अतः इसमें शृंगार रस का परिपाक नहीं हो पाया है।

वीर और शृंगार रस के अतिरिक्त स्कन्दगुप्त में हास्य, वीभत्स, भयानक, करुण और शान्त रस भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। मुदगल और मातृगुप्त के वार्तालाप में हास्य की योजना की गई है। किन्तु इस हास्य-विनोद द्वारा भी नाटककार ने पूर्व घटित घटनाओं और भावी संभावनाओं की सूचना दे दी है। वीभत्स रस के दो स्थल दिखाई देते हैं—(1) जब हूण सैनिक नागरिकों पर अत्याचार करते हैं। (2) जब महादेवी की मृत्यु का यड्यन्त्र रचा जाता है। भयानक रस का आभास शर्वनाग, भटार्क और प्रपंचबुद्धि के व्यक्तित्व में मिलता है। नाटक के आरम्भ में ‘अन्धकार सुख कितना मादक और सारहीन है’, तथा अन्त में, ‘जिसमें सुखों का अन्त न हो इसलिए सुख करना ही न चाहिये’ आदि पंक्तियों में निर्वेद (शान्त रस का स्थायी भाव) झलकता है। किन्तु ऐसी सामग्री नाटक में इतनी नहीं मिलती जो कि शान्त रस को पुष्ट कर सके। अतः वीर रस की पुष्टि ही नाटककार को अभिधेय थी, उसमें युद्धवीर और दानवीर की निष्पत्ति बड़ी ही सफल हुई है।

## अभिनेयता

अभिनेयता दृश्यकाव्य का प्रधान लक्षण माना गया है। वस्तुतः रंगमंच और नाटक में अटूट सम्बन्ध है। नाटक के बिना रंगमंच का कोई अस्तित्व नहीं होता, किन्तु रंगमंच से भी पहले नाटक नाटककार का होता है जो उसकी रचना करते समय उसे अपने मानस मंच पर अभिनीत होते देखता है। इस प्रकार सर्जन की प्रक्रिया में ही वह उसके प्रस्तुतीकरण के ढाँचे की भी कल्पना करता रहता है। भले ही रंगमंच पर लाने पर वह नाट्यकृति उस रंगमंच के दायरे में न आ पाये और रंगमंच के बीच विवाद उठ खड़ा हो, नाटककार रंगमंच के प्रति आक्रोश व्यक्त करे और रंगमंच नाटककार की अनुभवहीनता की बात करे।

प्रसाद के मन में रंगमंच के प्रति आक्रोश था और उन्होंने 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में इसे व्यक्त करते हुए लिखा भी है—'रंगमंच की बाह्य-बाधकता का जब हम विचार करते हैं तो उसके इतिहास से यह प्रकट होता है कि काव्यानुसार प्राचीन रंगमंच विकसित हुए और रंगमंचों की नियमानुकूलता मानने के लिए काव्य बाधित नहीं हुए। अर्थात् रंगमंच को ही काव्य के अनुसार अपना विस्तार करना पड़ा तथा प्रत्येक काल में माना जायेगा कि काव्यों के अथवा नाटकों के लिए ही रंगमंच होते हैं। काव्य की सुविधा जुटाना रंगमंच का काम है। रंगमंच के सम्बन्ध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जाएँ। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हो, जो व्यावहारिक है। हाँ, रंगमंच पर सुशिक्षित और कुशल अभिनेताओं तथा मर्मज्ञ सूत्रधार के सहयोग की आवश्यकता है। देश-काल की प्रवृत्तियों का समुचित अध्ययन भी आवश्यक है। फिर तो पात्र रंगमंच पर अपना कार्य सुचारू रूप से कर सकेंगे। इन सबके सहयोग से ही हिन्दी रंगमंच का उत्थान संभव है।'

आलोचकों ने प्रसाद के नाटकों की सफलता के बारे में प्रायः सन्देह प्रकट किया है। उनका कहना है कि लम्बे और जटिल कथानक, विस्तृत कथोपकथन, कवित्वपूर्ण शैली, स्वगत कथनों और गीतों की अधिकता, दृश्य-विधान और दृश्य परिवर्तन सम्बन्धी दोष आदि के कारण प्रसाद के नाटकों का कलात्मक सौन्दर्य नष्ट हो गया है। वे काव्य प्रधान बन गये हैं और रंगमंच की दृष्टि से असफल जान पड़ते हैं। स्कन्दगुप्त की नाटकीयता और रंगमंचीय सफलता के सम्बन्ध में डॉ. भगवतशरण अग्रवाल का मत है—“हमारी सम्मति में रंगमंच की दृष्टि से स्कन्दगुप्त अथवा प्रसाद के अन्य अधिकांश नाटक भी असफल हैं, खेले जाने के अयोग्य। उनमें साहित्यिक सौन्दर्य जरूर है, पर वे केवल पढ़ने के काम के हैं। कोई नाटक कम्पनी उन्हें अपने आप स्वाभाविक रूप से खेलने को उद्यत न होगी, न हुई है। कोई एक बार खेल भी ले तो दूसरी बार सम्भवतः उसे पर्याप्त नहीं मिलेंगे।.....गाने स्कन्दगुप्त के ऐसे नहीं जो सामान्य दर्शकों को स्पर्श कर सकें—पात्रों की बहुलता भी स्कन्दगुप्त के खेलने में विघ्न डालेगी।”

स्पष्ट है कि प्रसाद के नाटक वर्तमान रंगमंच की सुविधाओं को ध्यान में रखकर नहीं लिखे गये। किन्तु आज के वैज्ञानिक साधनों के उपयोग से नाटकों के योग्य रंगमंच के निर्माण पर उन्होंने बल अवश्य दिया है। ऐसी स्थिति में उनके स्कन्दगुप्त आदि नाटक सुरुचि सम्पन्न प्रेक्षकों के सामने मंच पर प्रस्तुत किये जा सकते हैं। प्रसाद ने अपने नाटकों के अभिनय के सम्बन्ध में कहा है—“मेरी रचनाएँ तुलसीदास शैली और आगाहश्र की व्यावसायिक रचनाओं के साथ नहीं नापी-तोली जानी चाहिए। मैंने उन नाटक कम्पनियों के लिए नाटक नहीं लिखे जो चार चलते अभिनेताओं को एकत्र कर कुछ पैसा जुटा कर, चार पर्दे माँग लेती हैं और दुअन्नी अठन्नी के टिकट पर इक्के वाले, खोम्बे वाले और दुकानदारों



को बटोरकर जगह-जगह प्रहसन करती फिरती है। 'उत्तर रामचरित', 'शकुन्तला' और 'मुद्राराक्षस' नाटक न कभी ऐसे अभिनेताओं द्वारा अभिनीत हो सकते हैं और न जन-साधारण में रसोद्रेक के कारण बन सकते हैं। उनकी काव्य प्रधानशैली कुछ चाहती है। यदि परिष्कृत बुद्धि के अभिनेता हों, सुरुचि-सम्पन्न सामाजिक हों, पर्याप्त द्रव्य काम में लाया जाये तो नाटक अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।”

प्रसाद के उपर्युक्त दृष्टिकोण को जान लेने के बाद उन आरोपों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, जो उनके नाटकों की अभिनय-सम्बन्धी दुर्बलता पर लगाये जाते हैं। फिर भी उनको जान लेना आवश्यक है। उनके नाटकों पर सबसे पहला आक्षेप यह किया जाता है कि वे घटना बहुल और दीर्घकाय हैं। स्कन्दगुप्त में पाँच अंक और तैंतीस दृश्य हैं जिनमें एक लम्बी अवधि की घटनाओं को एकत्र कर दिया गया है। इतनी घटनाओं को एक साथ मंच पर देखकर दर्शक न तो स्मरण रख सकता है और न उनकी संगति बिठा सकता है। घटनाओं की जटिलता से अभिनेताओं को भी असुविधा होगी। घटनाओं के साथ ही दृश्यों की बहुलता तथा इनका कथावस्तु से असम्बद्धता का आक्षेप भी लगाया जाता है। कुल 33 दृश्यों में से पथ का दृश्य छः बार, रणक्षेत्र, प्रकोष्ठ तथा विहार के दृश्य तीन बार स्कन्धावार, दुर्ग का एक भाग, शिप्रातट, राजसभा, उपवन के दृश्यों दो बार प्रस्तुत किए गए हैं। अन्तः पुर का द्वार प्रकोष्ठ के द्वारा ही दिखाया जा सकता है। देवकी के राजमन्दिर का दृश्य राजमहल के पर्दे द्वारा ही दिखाया जा सकता है। न्यायाधिकरण के दृश्य को सामान्य पर्दे के पृष्ठाधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है। बन्दीगृह, श्मशान, कुटी के दृश्य के लिए पृथक् पदों के निर्माण की आवश्यकता है। इस प्रकार 12-13 दृश्यपटों के निर्माण द्वारा स्कन्दगुप्त नाटक का अभिनय किया जा सकता है। चतुर्थ अंक चतुर्थ दृश्य मातृगुप्त के वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित है। मूल कथानक से इनका सम्बन्ध केवल चर की इस सूचना से है कि **“सम्राट का पता नहीं लगा। पंचनद हूणों के अधिकार में है और वे काश्मीर पर भी आक्रमण करना चाहते हैं।”** पंचम दृश्य भी मूल कथानक को विकसित करने में विशेष सहयोग नहीं देता। इन दोनों दृश्यों को सूच्यान्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है। श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने अन्तिम दृश्य को भी व्यर्थ एवं अनपेक्षित कहा है। किन्तु वस्तुस्थिति यही है कि यह दृश्य नाटक का प्राण है। नाटक की प्रसादांत प्रभविष्णुता का श्रेय मुख्यतः इसी दृश्य को है।

‘स्कन्दगुप्त’ में वर्जित और कठिन दृश्यों की भी भरमार है। भयानक युद्ध, नदी, बाँध, सेना, सेनाओं का परिचालन, दुर्ग द्वार और बाँध टूटना तथा जलप्रवाह में सैनिकों का बहना आदि ऐसे दृश्य हैं, जिन्हें आधुनिक और अत्यन्त विकसित रंगमंच पर भी दिखा पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। फिर भी थोड़े से परिवर्तन और कुशल निर्देशन से इसका नाटक अभिनय सम्भव है। कम महत्त्व की घटनाओं को सूच्य रूप में प्रस्तुत करके नाटक के आकार को कम किया जा सकता है। इससे दृश्य-संख्या भी कम हो जाएगी। कुछ दृश्यों में उचित काट-छाँट करके दृश्य योजना को सरल बनाया जा सकता है।

‘स्कन्दगुप्त’ नाटक पर पात्रों की अधिकता का दोष लगाया जाता है। नाटक के पात्रों की संख्या जितनी ही अधिक होती है, पात्रों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने में उतनी ही अधिक कठिनाइयाँ सामने आती हैं। जितने ही अधिक पात्र होंगे, नाटक तैयार करने के लिए उतने ही अधिक पात्रों को प्रशिक्षित करना पड़ेगा साथ ही पात्रों के नामों को याद रखने में प्रेक्षकों को असुविधा होगी। स्कन्दगुप्त नाटक में बत्तीस पात्रों की सूची तो नाटककार ने पात्र-परिचय में ही प्रस्तुत कर दी है। इनके अतिरिक्त चर, दूत, सैनिक

और दास-दासियों को मिलाकर पात्रों के एक बहुत बड़े दल की आवश्यकता नाटक के लिए होगी। इतनी भीड़-भाड़ में रंगमंच पर अव्यवस्था और असुविधा होगी। पात्र-संख्या अधिक है किन्तु ऐतिहासिक कथानक की योजना एवं तदनुकूल अपेक्षित वातावरण के निर्माण के लिए उसका आधिक्य लम्ब है। जागरूक प्रेक्षक निश्चय ही नाटककार की इस विवशता को दोष सिद्ध नहीं करेगा और जहाँ तक अभिनेता उपलब्ध करने का प्रश्न है—महत्कार्य की योजना तुच्छ प्रयत्नों द्वारा सम्भव नहीं होती। वैसे भी कुछ पात्रों की दुहरी भूमिका दी जा सकती है, क्योंकि नाटक में अनेक पात्र ऐसे हैं जो क्षणमात्र के लिए एक-एक बार मंच पर आते हैं। इस प्रकार पात्रों की संख्या को भी नियन्त्रित किया जा सकता है।

जहाँ तक भाषा की क्लिष्टता और समान भाषा के प्रयोग का सम्बन्ध है यही कहा जा सकता है कि प्रसाद ने अपने नाटक जन सामान्य के लिए नहीं लिखे हैं। उनके लिए लिखे हैं जो शिक्षित और परिष्कृत मनोवृत्ति के हैं। भाषा वास्तव में पात्रों की स्थिति, चरित्र और मनोवृत्ति के अनुकूल हुआ करती है। प्रसाद ने सर्वांश में उसका ध्यान रखा है। नाटक में प्रयुक्त भाषा में सर्वत्र एक विशिष्ट औदात्य है। भाषा सांस्कृतिक गरिमा से ओत-प्रोत है। शब्दों का प्रयोग प्रसंगानुकूल एवं सावधानी से किया गया है। प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में धातुसेन कहता है—‘एक विकट अभिनय का प्रारम्भ होने वाला है’ तथा अगले ही दृश्य में अनन्तदेवी अपने प्रकोष्ठ में एक भयानक खेल का श्रीगणेश करती है। भाषा में वातावरण को त्रासपूर्ण बनाने की क्षमता भी देखने को मिलती है। पर्णदत्त कहता है—“प्रमाण! प्रमाण अभी खोजना है? आँधी आने के पहले आकाश जिस तरह स्तम्भित हो जाता है, बिजली गिरने से पूर्व जिस प्रकार नील कादम्बिनी का मनोहर आवरण महाशून्य पर चढ़ जाता है, क्या वैसी ही दशा गुप्त साम्राज्य की नहीं है।” अगले ही पृष्ठ पर एक सैनिक कहता है—“नायक न जाने क्यों हृदय दहल उठा है, जैसे सनसन करती हुई डर से, यह रात सिसकती जा रही है। पवन में गति है परन्तु शब्द नहीं। सावधान रहने का शब्द मैं चिल्लाकर कहता हूँ परन्तु मुझे ही सुनाई नहीं पड़ता। यह सब क्या है नायक?” एक ओर भाषा रंगमंच पर वातावरण की भयावहता को प्रतिपादित करने में समर्थ है तो दूसरी ओर हास्यास्पद वातावरण की सर्जना का गुण भी उसमें विद्यमान है। तृतीय अंक के चतुर्थ दृश्य में भीम का कथन—‘मुझे अभी स्नान करना है, जाता हूँ,’ और देवसेना का उत्तर, ‘भाई, अपने शरीर के लिए बड़े निश्चित रहते हो,’ शिष्ट हास्य की सर्जना करता है।

कतिपय स्थलों पर ध्वन्यात्मक शब्दों का व्यवहार नाटक के प्रभाव का संवर्द्धन करने में उपयोगी सिद्ध हुआ है—‘पक्षियों को देखो’, उनकी ‘चहचह’, ‘कलकल’, ‘छलछल’, में काकली में—रागिनी है, तथा उसका स्वर अन्य वृक्षों से नहीं मिलता। वह अकेले अपने सौरभ की तान से दक्षिण-पवन कम्प उत्पन्न करता है, कलियों को चटकाकर, ताली बजाकर, झूम-झूमकर नाचता है। अपना नृत्य, अपना संगीत स्वयं देखता है और सुनता है। उसके अन्तर में जीवन-शक्ति वीणा बजाती है। इसी प्रकार हम नाटक में प्रयुक्त सम्बोधनों में सांस्कृतिक गरिमा के संरक्षण का सफल प्रयास देखते हैं, यथा—आर्य, वीर बाले, आयुष्मान, प्रिय, देव, साधु, आर्य, नारी, करुणा, सहचर आदि सम्बोधन तत्कालीन संस्कृति का दिग्दर्शन कराने में पूर्ण समर्थ हैं। महाबलाधिकृत, महाप्रतिहार, परमभट्टारक, दण्डनायक आदि राजकीय सम्बोधनों का व्यवहार तत्कालीन राजकीय व्यवहार प्रणाली को साक्षात् प्रस्तुत कर देता है।

नाटक के कथोपकथनों में दर्शक को प्रभावित करने की अपूर्व क्षमता है। नाटक में कतिपय स्थलों पर स्वगत कथनों का प्रयोग किया गया है। परमेश्वरीलाल गुप्त का आक्षेप है कि 'ये स्वगत कहीं-कहीं काफी लम्बे और भाषण के समान हैं। इनमें कोई ऐसा स्वगत नहीं जो मानसिक संघर्ष को व्यक्त करता है और जिसके अव्यक्त रहने पर कथावस्तु के विकास में बाधा पड़ती हो।' वस्तुतः सभी स्वगत-कथन लम्बे नहीं हैं और जो कुछ लम्बे बन गए हैं उनके सम्बन्ध में ध्यातव्य यह है कि वे दृश्यों के आदि में ही उपलब्ध होते हैं। स्वगत कथनों की योजना पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप के मध्य कम है तथा वह भी मुख्यतः प्रेम-प्रसंगों में होने के कारण पात्र एवं प्रसंग के अनुपयुक्त प्रतीत नहीं होते। चतुर्थ अंक के आठवें दृश्य के प्रारम्भ में स्वगत-कथन लम्बा हो गया है किन्तु स्कन्दगुप्त सात दृश्यों के उपरान्त हमारे समक्ष उपस्थित होता है। उसके जीवित होने का कोई भी समाचार नहीं मिलता और लगभग यह निश्चित हो जाता है कि कुम्भा का बाँध टूटने पर नदी के अपार जल ने उसे अन्तर्लीन कर लिया होगा—**“क्या कहूँ, कुंभा की क्षुब्ध लहरों से पूछो, हिमवान की गल जाने वाली बकों से पूछो कि वह कहाँ है। मैं नहीं....।”** ऐसी दुविधाग्रस्त मनःस्थिति वाले दर्शक के समक्ष स्कन्द जब एकाकी उपस्थित होता है तो वह उसकी भावधारा एवं स्थिति से तादात्म्य करने की तीव्र जिज्ञासा से संयुक्त होता है। तब स्कन्द के स्वगतकथन की लम्बाई अनुचित प्रतीत नहीं होती, प्रत्युत रंगमंचीय प्रभविष्णुता का संवर्द्धन करती है।

गीतों की अधिकता भी नाटक के अभिनय में एक बड़ी बाधा है। स्कन्दगुप्त नाटक में कुल 13 गीत हैं। ये गीत नर्तकियों द्वारा गाए गये हैं। दो मातृगुप्त द्वारा, दो विजया द्वारा, एक स्कन्द द्वारा, एक देवसेना की सखी द्वारा तथा पाँच गीत देवसेना द्वारा गाए गए हैं। दो गीत नेपथ्य से तथा एक गीत किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा गाया गया है। नर्तकियों के गान के सम्बन्ध में प्रो. रामचरण महेन्द्र का मत है—'और पृष्ठ 15 पर जो गाना—न छेड़ना उस अतीत स्मृति से, —दिया है वह तो हमारी राय में, किसी स्तर का नहीं कहा जा सकता।' किन्तु यह गीत कुमारगुप्त की विलासिता एवं कर्तव्य के प्रति अरुचि का साक्षात् रूप है। तृतीय दृश्य में मातृगुप्त का गीत लम्बा होने के कारण रंगमंच पर इसकी पूर्ण प्रस्तुति सम्भव नहीं अतः इसे संक्षिप्त कर अभिनयानुकूल बनाया जा सकता है। छठे दृश्य में बंधे हुए नागरिकों पर हूणों के नृशंस अत्याचार देखकर मुद्गल तथा मातृगुप्त के प्रार्थना गीत लघु होने के कारण रंगमंचीय हैं। इसके बाद के मातृगुप्त के दो-दो पंक्तियों वाले गीतों को हटाया जा सकता है। प्रथम अंक के अन्तिम दृश्य में देवसेना का गीत रहस्य-भावना से संयुक्त होते हुए भी उसकी प्रेम-भावना को प्रकट करता है। इस गीत की प्रसंगानुकूलता निर्विवाद है। द्वितीय अंक के चतुर्थ दृश्य में नेपथ्य से गान वातावरण के उपयुक्त प्रभाव उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ है। गीत लघु होने के कारण अभिनेय भी है। किन्तु इस गीत के पूर्व देवकी के कथन का ही उत्तर अनन्तदेवी गीत के उपरान्त देती है। देवकी और अनन्तदेवी के कथन के मध्य गीत गायन के लिए कोई अवकाश नहीं है। गीत की उपयुक्तता है किन्तु उसकी रंगमंचीय सार्थकता एवं स्थान आक्षेपणीय है। तृतीय अंक के विजया के लघु गीत का रंगमंच पर अभिनय संभव है। द्वितीय दृश्य में नेपथ्य से गाया गया गीत देवसेना द्वारा प्रस्तुत की गई विचारधारा के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि का निर्माण करता है। चतुर्थ अंक के द्वितीय दृश्य में नर्तकियों के गीत को हटाया जा सकता है किन्तु इस गीत का भी भटार्क के चारित्रिक विकास के सन्दर्भ में रंगमंचीय महत्त्व है। आठवें दृश्य में लम्बे स्वगत-कथन के उपरान्त स्कन्द का प्रार्थना-गीत खटकता है किन्तु स्कन्द की सामयिक परिस्थितियों को देखते हुए उसकी

प्रार्थना अनुपयुक्त नहीं लगती। पंचम अंक के द्वितीय दृश्य में विजया का स्कन्द को आकृष्ट करने के लिए गाया गया गीत बहुत लम्बा है। स्कन्द इतना लम्बा गीत सुन सकने की स्थिति में नहीं है। अतः इस गीत को हटाया जा सकता है। तृतीय दृश्य में देवसेना का गीत नागरिकों में राष्ट्रीय चेतना उबुद्ध करने में सहायक होता है, अतः प्रसंगानुकूल है। पंचम दृश्य में रणक्षेत्र के उपयुक्त एक प्रयाणगीत हैं किन्तु इसका विस्तार अभिनेतात्मकता में व्यवधान उपस्थित करता है। इसका संक्षिप्तीकरण आवश्यक है। अन्तिम दृश्य प्रभविष्णुता की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट है। रंगमंचीय दृष्टि से द्वितीय अंक के चतुर्थ दृश्य में नेपथ्य से गाया गीत अनुचित है। प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में मातृगुप्त का गीत, पंचम अंक के द्वितीय दृश्य में विजया का गीत तथा प्रयाणगीत संक्षिप्त करके अभिनीत किए जा सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रो. रामचरण महेन्द्र का यह मत कितना भ्रामक है कि 'गाने स्कन्द गुप्त में ऐसे नहीं जो सामान्य दर्शकों को स्पर्श कर सकें। अव्वल तो उनमें और कविताओं में कोई अन्त नहीं है, कई घटिया किस्म के भी हैं।' यद्यपि इन गीतों की बहुलता दर्शकों में ऊब पैदा करने वाली है, तथापि इन गीतों की अपनी महत्ता है।

रंगमंच को ध्यान में रखते हुए प्रसाद ने नाटक में सर्वत्र अपेक्षित रंगसंकेत प्रस्तुत किए हैं। ये रंगसंकेत आंगिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य चारों प्रकार के अभिनय के लिए सहायक हैं। इन रंगसंकेतों में वातावरण का निर्माण करने की भी अद्भुत क्षमता है। प्रथम अंक के पंचम दृश्य में भटार्क के कथन से पूर्व 'तलवार खींचकर सिर से लगाता हुआ' रंगसंकेत राजकीय शिष्टाचार की परिपाटी का सूचक है अतः अभिनयात्मकता में साधक है। कतिपय स्थलों पर नेपथ्य से विशिष्ट ध्वनि-सूचक रंगसंकेत प्रदान किए गए हैं यथा नेपथ्य से रणवाद्य (पृ. 103, 106), नेपथ्य से कोलाहल, भयानक शब्द (पृ. 40, 47), धड़ाके के शब्द (पृ. 48), नेपथ्य से क्रन्दन (पृ. 131) आदि।

प्रसाद के नाटक लिपटवाँ पदों को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं किन्तु प्रसाद अन्य उपादानों के प्रति भी कहीं-कहीं जागरूक दिखाई देते हैं। कुछ विशिष्ट दृश्यों में उनका ध्यान प्रकाश-योजना पर भी गया है। स्कन्दगुप्त में उन्होंने कुंभा की बाढ़ में डूबते हुए सैनिकों की त्रासदी और माँ के उद्बोधन से प्राप्त भटार्क के मन की दीप्ति को अन्धकार और प्रकाश से व्यंजित करने का संकेत किया है। इस प्रकार भटार्क एवं कमला पर तीन आलोक का निर्देश कर दृश्य के अन्त को एक विशेष औदात्य प्रदान किया है।

पात्रों के प्रवेश तथा प्रस्थान सम्बन्धी रूढ़ियों के पालन में भी प्रसाद ने सुविधानुसार संस्कृत, पारसी अथवा शेक्सपीयरीय रंग-विधान का अनुसरण किया है। प्रसाद के पात्र मंच पर एक विशेष प्रणाली से, एक विशेष परिस्थिति में प्रवेश और प्रस्थान करते हैं। अधिकांश परिस्थितियों में 'सहसा प्रवेश करके' बोलने लगते हैं। उनके प्रवेश के लिए प्रसाद पूरा वातावरण निर्मित करते हैं। ऐसी स्थिति में वे संस्कृत की 'कथोद्घात' शैली का बड़ा ही मार्मिक प्रयोग करते दिखते हैं। प्रवेश की भाँति ही प्रस्थान की भी प्रसाद ने एक निश्चित प्रणाली का अनुसरण किया है। प्रायः वे प्रस्थान बड़े तीव्र आवेग में करवाते हैं। जब पात्र अपनी पूरी बात कहकर प्रभाव की चरम सीमा पर दृश्यांतर अथवा कथावस्तु के आकस्मिक मोड़ देने के लिए प्रस्थान करता है तब अपूर्व रंग-क्षमता के दर्शन होते हैं। अधिकांश स्थितियों में प्रसाद ने इसी शिल्पविधि से काम लिया है। कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ प्रवेश-सम्बन्धी रंगसंकेत से पूर्व प्रस्थानसूचक कोई रंगसंकेत नहीं है।

स्कन्दगुप्त नाटक में कुछ रंगसंकेत ऐसे भी हैं जिन्हें मंच पर तद्वत् रूप में उपस्थित करना कठिन है। तृतीय अंक का अन्तिम रंगसंकेत इस दृष्टि से विचारणीय है—‘सब उतरना चाहते हैं, कुंभा में अकस्मात् जल बढ़ जाता है, सब बहते हुए दिखाई देते हैं।’ किन्तु इसे भी असम्भव नहीं कहा जा सकता क्योंकि श्री उत्पल दत्त के ‘अंगार’ नाटक के अभिनय के समय ‘फाइन आर्ट्स थियेटर’ में इसी प्रकार का दृश्य प्रस्तुत किया गया था। इसी प्रकार पंचम अंक के द्वितीय दृश्य में ‘भूमि खोदते समय एक भयानक शब्द के साथ रत्नगृह का प्रकट होना’ रंगसंकेत पर आक्षेप किया जाता है किन्तु किंचित् सावधानी से, आंगिक चेष्टाओं के योग से इस दृश्य को रंगमंच पर दिखाना कठिन नहीं है।

स्कन्दगुप्त नाटक में ‘संकलन-त्रय’ के पालन पर भी आक्षेप लगाया गया है। घटनाओं के बीच समय का अन्तर है और काल-क्रम दोष से भी नाटक सर्वथा मुक्त नहीं है। उदाहरण के लिए कुमारगुप्त के समय में हूणों का आक्रमण सर्वथा अनैतिहासिक है। नाटक का घटना-स्थल भी बिखरा हुआ है। वह अयोध्या और पाटलिपुत्र से लेकर गान्धार और सिन्ध तक तथा काश्मीर से लेकर मालव तक फैला हुआ है।

यदि हम इन त्रुटियों का समाहार करने में सफल हो सके तो स्कन्दगुप्त को अभिनेय बनाया जा सकता है। यह सत्य है कि प्रसाद के नाटक मूलतः अभिनय के लिए नहीं लिखे गए हैं, तथापि थोड़े परिवर्तनों से स्कन्दगुप्त को अभिनय के उपयुक्त बनाया जा सकता है, बल्कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन आदि अवसरों पर इसका सफल अभिनय हुआ भी है। परन्तु इसके अभिनय के लिए साहित्यिक अभिरुचि के अभिनेता होने आवश्यक हैं जो उनके नाटक की परिष्कृत भाषा के संवादों का अर्थ समझ सकें। वाचस्पति ने प्रसाद के नाटकों की इस चुनौती की ओर संकेत किया है—

‘प्रसाद के नाटकों की अभिनेयता के सम्मुख आज प्रायः पैंतीस-चालीस वर्षों से एक बड़ा प्रश्नचिह्न लगा हुआ है...बराबर यह कहा गया है कि साधन-सम्पन्न कोई दल और कल्पनाशील कोई निर्देशक प्रसाद को मिले तो उनके नाटकों की अभिनेयता प्रमाणित की जा सकती है—लम्बे नाटक को काट-छाँट कर सम्पादित कर सफलतापूर्वक प्रस्तुत करके प्रसाद की नाट्यकला के साथ न्याय किया जा सकता है, उनके प्रति अपने दायित्व का निर्वाह किया जा सकता है।’

समग्रतः शिल्प की दृष्टि से विचार कर हम इसी निष्कार्ष पर पहुँचते हैं कि स्कन्दगुप्त एक सफल नाटक है। प्रसाद ने इसमें स्वतन्त्र नाट्य-कला का प्रणयन किया है। कुल मिलाकर स्कन्दगुप्त का नाट्य-शिल्प कलात्मक है।

### (ख) भारतीय एवं पाश्चात्य शैलियों का समन्वय

‘स्कन्दगुप्त’ प्रसाद की ही नहीं, हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक नाट्यकृति है, जिसमें प्रसाद ने अपनी अनन्य प्रतिभा से अतीत की दुर्मेघ तहों में दबी भारतीय संस्कृति के उद्धार का स्तुत्य प्रयास किया। वैसे तो प्रसाद के समस्त नाट्य-साहित्य का मूलाधार भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल अतीत ही रहा है, जिसकी अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने पूर्वी एवं पाश्चात्य नाट्य-शैलियों को अपनाया है। प्रसाद के व्यक्तित्व का मूल धरातल समन्वय है। उन्होंने कथावस्तु, चरित्र, रस आदि की दृष्टि से इसी पद्धति का अनुसरण किया है। आरम्भ से ही अपने नाटकीय विधान में संस्कृत नाटक के शास्त्रीय तत्त्वों के साथ पाश्चात्य नाट्य पद्धति का अद्भुत समाहार किया है और अन्ततः वे अपने नाटकों के लिए एक स्वतन्त्र शैली की खोज

में सफल हुए हैं। इनमें एक ओर जहाँ संस्कृत नाट्य-शैली के उपकरणों यथा-वस्तु, नायक, नेता और रस का समुचित विनियोग हुआ है, वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य पद्धति के संघर्ष, क्रियाशीलता, व्यक्तिवैचित्र्यवाद तथा अन्तर्द्वन्द्वात्मक चरित्रांकन पद्धति आदि नवीन प्रवृत्तियों को भी ग्रहण किया गया है।

‘स्कन्दगुप्त’ नाटक की **कथावस्तु** जहाँ एक ओर भारतीय नाट्यशास्त्र की परिभाषा के अनुकूल है, तो दूसरी ओर इसमें पश्चिमी शैली का मिला हुआ रंग भी देखा जा सकता है। भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक का वृत्त इतिहास प्रसिद्ध होना चाहिए। स्कन्दगुप्त की कथावस्तु सर्वथा ऐतिहासिक है जिसे चार उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है—1. मगध का राजवंश, 2. मालव का राजवंश, 3. विक्रमादित्य, 4. कालिदास। इन सबके बारे में नाटककार ने ऐतिहासिक तथ्यों को सामने रखा है। पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी नाटकों की भाँति स्कन्दगुप्त तथा देवसेना के उद्योग से सम्बन्धित अधिकारिक कथा के साथ-साथ अनेक प्रासंगिक तथा छोटी-छोटी कथाएँ भी हैं। इन कथाओं में मालवराज बन्धुवर्मा की कथा, मातृगुप्त और मालिनी की कथा, विजया तथा अनन्तदेवी की कथाएँ सम्मिलित हैं। नाटक का वस्तु विन्यास कतिपय त्रुटियों के होते हुए भी अन्य नाटकों की अपेक्षा अधिक संगठित एवं सुसम्बद्ध है। इसमें भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुसार कार्यावस्थाओं, सन्धियों एवं अर्थप्रकृतियों की विधान कुशलतापूर्वक हुआ है। साथ ही पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार कार्य की पाँच अवस्थाएँ भी सहज ही प्राप्त हो जाती है। नाटक में पाँच अंक है। प्रत्येक अंक में कथा विकास की एक अवस्था का स्पष्ट परिचय मिलता है। प्रथम अंक परिचयात्मक है। इसमें कथा का **आरम्भ** हो जाता है जिसमें फल का निदर्शन भी है। नाटक का फल निम्न शब्दों में व्यक्त हुआ है—“त्रस्त प्रजा की रक्षा के लिए, सतीत्व सम्मान के लिए, देवता, ब्राह्मण और गौ को मर्यादा के विश्वास के लिए, आतंक से प्रकृति को आश्वासन देने के लिए आपको अपने अधिकार का उपयोग करना होगा।”

द्वितीय अंक में **प्रयत्नावस्था** के साथ पाश्चात्य नाट्यशास्त्र की **विकास** अवस्था भी है। इसमें नायक ‘स्कन्दगुप्त’ कार्यसिद्धि हेतु प्रयत्नशील होता है। तीसरे अंश में भारतीय **प्राप्त्याशा** की अपेक्षा पाश्चात्य **‘चरम सीमा’** का रूप अधिक स्पष्ट है। यहाँ कथा अनिश्चयात्मक रूप धारण करती है। स्कन्दगुप्त का दुःख अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। चौथे अंक में विरोधी दल की फूट, भटार्क का हृदय-परिवर्तन और स्कन्द का कुंभा के प्रवाह से बच निकलना आदि **नियताप्ति** का आभास-सा देते हैं। इसकी अपेक्षा स्कन्द की असहायावस्था, धर्मसंघों का विरोध आदि ऐसी स्थितियाँ हैं जिनमें पश्चिम की ‘निगति’ ही स्पष्ट दिखाई देती है। पाँचवें अंक में स्कन्द द्वारा आन्तरिक कलह की शान्ति तथा हूणों से भारतभूमि को निरापद बनाने पर फल की प्राप्ति होती है। इस प्रकार संघर्ष का भी अन्त हो जाता है। परन्तु व्यक्तिगत स्तर पर स्कन्द दरिद्र ही रह जाता है। क्योंकि देवसेना के प्रति आकर्षित होते हुए भी उसे स्वीकार नहीं कर सकता और जिस स्कन्द की प्रेम-लौ देवसेना के अन्धकारमय जीवन का पथ-प्रदर्शन करती है वही उसके घोर मानसिक विप्लव का कारण भी बनती है। दोनों देश के कल्याण के लिए अपना उत्सर्ग कर देते हैं। भारतीय कार्यावस्थाओं के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस नाटक में भारतीय और पाश्चात्य नाट्य शालियों का सहज एवं सुन्दर समन्वय हुआ है। इसमें पाश्चात्य पाँच अवस्थाएँ ढूँढ़ना अत्यन्त सरल है क्योंकि इसका वस्तु-विन्यास ही विरोध के आधार पर हुआ है। मध्य में यह विरोध चरम सीमा पर जा पहुँचता है। फिर उतार आकर अन्त में उसकी परिसमाप्ति हो जाती है परन्तु इसके परिणाम

को पाश्चात्य नाटकों के समान दुःखपूर्ण नहीं बनाया गया। पाँचों अंकों में कार्यावस्थाओं एवं सन्धियों का विधान भारतीय वस्तु योजनानुसार ही हुआ है। नाटक में मंगलाचरण, भरतवाक्य, नान्दीपाठ, विष्कम्भक तथा प्रवेशक का भी सर्वथा अभाव है। परन्तु नाटक का प्रथम दृश्य परिचयात्मक है। इसमें परिस्थितियों एवं पात्रों का परिचय मात्र है। इस प्रकार विधिवत प्रस्तावना न होने पर भी इसमें प्रस्तावना का उद्देश्य निहित है।

संस्कृत नाटकों के विदूषक अंग्रेजी के क्लाउन से भिन्न होते हैं। विदूषक प्रायः ब्राह्मण, पेटू और मूर्ख होता है और हास्य का प्रतिनिधि होता है। स्कन्दगुप्त नाटक का मुद्गल विदूषक से ही समता रखता है। किन्तु उसे केवल विदूषक ही नहीं कहना चाहिए क्योंकि वह एक सामान्य और कार्यवाहक पात्र भी है। मातृगुप्त से मुद्गल कहता है—“मैं महादेवी का संदेश लेकर अवन्ती गया वहाँ युवराज नहीं थे। बलाधिकृत पर्णदत्त की आज्ञा हुई कि महाराज पुत्र गोविन्द गुप्त को जिस तरह हो, खोज निकालो। यहाँ तो विकट समस्या है।” इस प्रकार इस नाटक में प्राचीन ब्राह्मणत्व और नवीन लक्ष्य का भी समन्वय है।

‘स्कन्दगुप्त’ नाटक वस्तु संगठन की दृष्टि से ही प्रौढ़ नाटक नहीं, चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी प्रौढ़ रचना है। इस नाटक के चित्रफलक पर प्रसाद ने जीवन की विभिन्न स्थितियों को घटित होते हुए दिखाया है। पग-पग पर जीवन की इन स्थितियों में टकराहटें उत्पन्न होती हैं। जीवन प्रक्रिया कोई बारिश की बूँद नहीं जो बिना कोई संघर्ष किए अपना अस्तित्व खो बैठे। यह तो एक मंदाकिनी है जो राह में आने वाले कूलों से टकराती झूमती थपेड़े खाती है। किन्तु फिर भी बहती है चूँकि वही उसकी नियति है। प्रसाद के नाटकों की शक्ति यही है। उनके पात्र विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करते हैं और अन्त तक करते हैं जहाँ वह अपने अस्तित्व को उच्चमूल्यों के हेतु समर्पित कर देते हैं। स्कन्दगुप्त के पात्रों में इस आलोक की छटा सहज ही देखने को मिलती है। इस नाटक में मानव जीवन की सहज अनुभूतियों का यथावत् एवं सूक्ष्म चित्रण, पूर्ण वैचित्र्य के साथ अत्यन्त कलात्मक ढंग से हुआ है। सभी पात्र निर्विकार आनन्द की स्थिति में रमने की अपेक्षा संघर्षों से उभरते दिखाई देते हैं। ऐतिहासिक नाटक होने के कारण नायक उच्चवर्ण, भारतीय नाटक के गुणों से युक्त आदर्शोन्मुख व्यक्ति है। स्कन्दगुप्त धीरोदात्त नायक है। प्रतिनायक प्रपंचबुद्धि, अनन्तदेवी, विजया और भटार्क धोरोद्धत है। नायक के चरित्र में उत्कर्ष स्थापना हेतु एवं वस्तु में नाटकीयता लाने के लिए प्रतिनायक भटार्क की कल्पना की गई है।

पाश्चात्य सिद्धान्तों के अनुसार नाटक का प्राण एवं आधार संघर्ष भी इस नाटक की प्रमुख विशेषता है। यह संघर्ष बाह्य ही नहीं अपितु पात्रों के हृदय में भी है। इस संघर्ष के दोनों रूपों का अभास प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में ही मिल जाता है। बाह्य संघर्ष इस नाटक में अनेक स्थलों पर दिखाई देता है। गुप्त साम्राज्य के चारों ओर षड्यन्त्रों की आँधी चलती है। कुमारगुप्त की विलासिता दिनोदिन बढ़ती जाती है और अनन्तदेवी इसके लिए राज्यलिप्सा में कुचक्र की ज्वाला फैला देती है—

“आँधी आने से पूर्व आकाश जिस प्रकार स्तम्भित रहता है, बिजली गिरने से पूर्व जिस प्रकार नील कादम्बिनी का आवरण महाशून्य पर चढ़ जाता है, गुप्त साम्राज्य की कुछ वैसी ही दयनीय स्थिति है।”

शकों और हूणों का सम्मिलित आक्रमण होता है। सौराष्ट्र पदाक्रान्त हो चुका है। पश्चिम मालवा संकट में है। वल्लभी का पतन होने वाला है। पुष्पमित्रों से युद्ध की सम्भावना है। सारा साम्राज्य अन्धकारमय है।

पाश्चात्य शैली के अनुरूप नाटक में आन्तरिक संघर्ष भी खूब दिखाई देता है। अनन्तदेवी स्कन्द के विरुद्ध खूब षड्यन्त्र रचती है। भटार्क विश्वासघात करके कुंभा का बाँध तोड़ देता है। भटार्क प्रपंचबुद्धि से मिलकर देवसेना से प्रतिशोध लेना चाहता है। उग्रतारा की साधना के लिए प्रपंचबुद्धि को बलिदान चाहिए। इसके लिए देवसेना को उपयुक्त समझा जाता है। श्मशान में स्कन्द उसकी रक्षा करता है। चौथे अंक में विजया और अनन्तदेवी का संघर्ष चलता है। इस प्रकार पूरा नाटक अन्तर्संघर्षों की योजना से भरा पड़ा है।

व्यक्तिगत संघर्ष अथवा अन्तर्द्वन्द्व के उदाहरण भी नाटक में भरे पड़े हैं। चरित्र-चित्रण करते समय प्रसाद ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को सफलतापूर्वक प्रकट किया है। **स्कन्द—इस साम्राज्य का बोझ किस लिए? यदि मैं न होता तो यह संसार अपनी स्वाभाविक गति से आनन्द से चला करता।”**

देवसेना भी संघर्ष के श्रेय और प्रेय के हिंडोले में झूलती दिखाई देती है। स्कन्द के प्रति तथा देश की रक्षा—इन दोनों के मध्य उसके मन में द्वन्द्व चलता है—**“हृदय की कोमल कल्पना सो जा! जीवन में जिसकी सम्भावना नहीं जिसे द्वार पर आये लौटा दिया था, उसके लिए प्रकार मचाना क्या तेरे लिए अच्छी बात है।”**

विजया के मन में भी स्वार्थ और परमार्थ का द्वन्द्व है। भटार्क अपनी भूलों पर पश्चात्ताप करता है। इन पर शेक्सपियर के दुःखान्त नाटकों का गहरा प्रभाव है।

संस्कृत नाटकों में नायक की दुर्बलताओं का संकेत नहीं होता। स्कन्दगुप्त में अनेक परिवर्तन और दुर्बलताओं के चित्रण मिलते हैं। यह पाश्चात्य दुःखान्त नाटकों के आधार पर है।

प्रसाद की पात्र परिकल्पना में नवीनता इस बात में है कि उन्होंने पात्रों की स्थिति शास्त्रीय दृष्टि से स्थिर करने की अपेक्षा उन्हें मानवीय और सामाजिक संदर्भ में देखने का प्रयास किया है। पात्र परिस्थिति और परिणाम से अलग अपना कोई भिन्न अस्तित्व नहीं रखते।

जहाँ तक चरित्रांकन की शिल्पविधि का प्रश्न है उसमें प्रसाद ने कोई प्रयोग नहीं किया है। परम्परा के अनुसार उन्होंने भी स्वगत, क्रिया व्यापार और संवाद के माध्यम से चरित्र-चित्रण किए हैं। उन्होंने अवचेतन मन का संकेत देने के लिए स्वगत कथनों का सुन्दर प्रयोग किया है जिनमें पात्र स्वयं आत्मचिन्तन करता हुआ मिलता है। स्कन्द की द्वन्द्वात्मक प्रकृति, देवसेना के प्रेम का विश्लेषण और विजया का पश्चात्ताप के माध्यम बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त हुआ है।

चरित्र विकास के सम्बन्ध में प्रसाद ने एक निश्चित परिकल्पना से काम लिया है। उन्होंने मुख्यतः साम्य और वैषम्य के आधार पर पात्रों का समूहीकरण किया है। स्कन्द, देवकी, बन्धुवर्मा, भीम, गोविन्दगुप्त, कमला, राजा, देवसेना, पर्णदत्त आदि एक वर्ग के पात्र हैं और पुरगुप्त, विजया, भटार्क, अनन्तदेवी, मालिनी आदि दूसरे वर्ग के। चरित्रांकन की दृष्टि से स्कन्दगुप्त के सभी पात्रों के समग्ररूप से दो वर्ग किए जा सकते हैं—आदर्श मानव पात्र और यथार्थ मानव पात्र आदर्शपात्र प्रसाद की भव्य दृष्टि है। इनके नाटकों के पात्रों में सर्वत्र व्याप्त सांस्कृतिक स्वर के मूल उद्गम वही विशिष्ट पात्र हैं। प्रख्यातकीर्ति एवं स्कन्द, देवसेना, आदर्श पात्र ही कहे जाएँगे। दूसरी और यथार्थ पात्र साधारण मनुष्य मात्र हैं, आदर्श नहीं। भटार्क, देव, विजया, अनन्तदेवी, पुरगुप्त आदि यथार्थ पात्र ही कहे जाएँगे। अतः चरित्र-चित्रण के क्षेत्र



में भी भारतीय और पाश्चात्य धारा का सुन्दर मेल दृष्टिगत होता है। भारतीय आचार्य अपनी आदर्शवादिता एवं रस दृष्टि के कारण नायक को लोकभूमि पर प्रतिष्ठित करते हैं तो पाश्चात्य विद्वान उसे व्यक्तिगत भूमि पर। 'स्कन्दगुप्त' के प्रायः सभी प्रधान पात्रों में जहाँ एक ओर उच्चकुल शील का भव्य रूप दिखाई पड़ता है वहाँ उनमें पाश्चात्य द्वन्द्वमूलक चरित्रांकन पद्धति की भी झलक मिल जाती है। स्कन्द, देवसेना आदि में शील वैचित्र्य के साथ जीवन की वास्तविकता एवं स्वाभाविकता का सन्निवेश हुआ है। इस नाटक में पाश्चात्य नाट्यशैली की यथार्थता के साथ भारतीय कर्मयोग का सुन्दर अनुबन्ध हुआ है। अन्य पात्रों भटार्क, विजया, पुरगुप्त, अनन्तदेवी आदि में भी व्यक्तिवैचित्र्य भरने का सफल प्रयास हुआ है। इस प्रकार प्रसाद जी ने भारतीय आदर्शवादिता और पाश्चात्य यथार्थवादिता का मेल दिखाकर चरित्र वैशिष्ट्य को रसनिष्ठ बनाकर पात्र निरूपण की एक नवीन पद्धति की सृष्टि की है।

प्राच्य और पाश्चात्य नाट्यशैलियों का सुन्दर एवं सफल सामंजस्य प्रसाद की 'प्रसादान्त कला' की स्थापना में है। पाश्चात्य-नाटकों में जिस करुण रस की तीव्रता के दर्शन होते हैं वैसे भारतीय नाटकों में नहीं। इस नाटक के पाश्चात्य प्रभाव के कारण विषाद और वेदना तीव्र छाया आद्यन्त मँडराती रहती है। वेदना की यह सफल धारा स्त्री पात्रों में प्रायः असफल प्रेम के रूप में दृष्टिगत होती है। इन पात्रों के चरित्र के मूल में नियति और चरित्रदौर्बल्य को आधार बनाया गया है। नाटक में आद्यन्त व्याप्त वेदना की सजलधारा अन्त में सुखपूर्ण हो जाती है। अतः नाटक का पर्यवसान भारतीय परम्परानुसार सुखान्त ही हुआ है। नाटक के पात्र नियति के हाथ का खिलौना बन हुए भी अन्त तक सक्रिय और संघर्षशील बने रहे हैं। यही कारण है कि नाटक के दुःख सुख का, अवसाद और कर्मठता का विचित्र संयोग हुआ है। अन्त में फलागम से पूर्व दुःख सुख का अन्त सभी नाटकों में हो जाता है। दुष्ट पात्र अपनी कुप्रवृत्तियों और वासनाओं को छोड़कर सत्पथ पर आ जाते हैं, किन्तु इन नाटकों के अन्त सुखान्त होते हुए भी पीड़ा और वेदना से ओत-प्रोत हैं। अन्त में आर्य साम्राज्य का बर्बर हूणों से उद्धार हो जाता है और नायक अपनी उद्देश्य पूर्ति में सफल होता है परन्तु नायक और नायिका का मार्मिक बिछोह और स्कन्द के यह शब्द— 'हतभाग्य स्कन्द, अकेला स्कन्द, आहे।' हृदय के तारों को झनझना कर रख देते हैं। अतः प्रसाद की सुखान्त भावना प्रायः वैराग्यपूर्ण होती है। डॉ. नगेन्द्र के शब्द—“इसका कारण है उनके जीवन की वही करुण जिज्ञासा जो उनके प्राणों को सदैव विलोडित करती रहती थी—बौद्ध इतिहास और दर्शन के मनन ने उसे और भी तीखा कर दिया था। उनके नाटकों में बौद्ध एवं आर्यदर्शन का संघर्ष एवं समन्वय है। बिल्कुल उचित ही जान पड़ता है कि इस नाटक का अन्त न सुखपूर्ण है न दुःखपूर्ण अपितु प्रसादान्त है। उनकी सुखान्त भावना में आत्मबोध, शान्ति, आत्मसंतोष एवं वैराग्य का अपूर्व एवं विचित्र सम्मिश्रण हुआ है। उन्होंने पश्चिम की दुःखान्त भावना को बदल कर दार्शनिकता का पुट दिया है।”

पाश्चात्य प्रभाव के कारण प्रस्तुत नाटक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व पर आधारित है किन्तु भाव की प्रगाढ़ता को देखते हुए रस को उसके व्याघात से बचाने का प्रयास किया गया है और कई नाटकीय परिस्थितियों में यह रस की प्रभाववृद्धि में सहायक हुआ लगता है। नाटक में इसका सुन्दर उदाहरण वहाँ है जहाँ परिस्थितियों से टूटा हुआ हतोत्साह स्कन्द राजा और शर्वनाग की कटूक्तियों, कमला के उद्बोधन और देवसेना की करुण चीत्कार से पुनः कर्तव्य हेतु सन्नद्ध हो उठता है।

प्रस्तुत नाटक में वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। प्रसाद ने वीर रस को साध्य नहीं साधन रूप में अपनाया है। संभवतः इस प्रवृत्ति के कारण ही नाटक की निर्वहण सन्धि में एक और अद्भुत की अनुभूति होती है, दूसरी ओर शान्त की। प्रसाद ने वीर रस का पर्यावसान शान्त में किया है। इस में वीररस नाटक के बृहदांश में दिखाई देता है, किन्तु शान्त का प्रस्फुटन नये प्रभात की ज्योति किरण सा सूक्ष्म होने पर भी अत्यधिक आकर्षक लगता है। अभिनव गुप्त ने भी वीर और शान्त का आस्वाद विरोधी नहीं माना। वस्तुतः निर्वाण समाधि और विश्रान्ति के स्तर पर उन्होंने रस की जो आत्मवादी और आनन्दवादी व्याख्या की है उसमें शान्त रस का 'निस्तरण महोदधिकल्प समरसता' के रूप में हुआ है। समरसतापूर्ण यह शान्त रस ही नाटक का मूल स्वर है। करुण, शृंगार आदि रसों का विलय भी शान्त रस में हुआ है। यौवन के स्वाभाविक भावोल्लास को प्रमुखता प्रदान करने के बावजूद शृंगार रस बहुव्याप्त नहीं है वस्तुतः वह वीर और शान्त का सहायक मात्र है। शृंगार प्रखर होते हुए भी विराट मानव के कल्याण और उत्सर्ग की भावभूमि पर परिशोधित शृंगार है। अतः नाटक का अन्त करुणा और विरागमय आनन्द में होता है। सम्भवतः इसकी उपलब्धि उन्हें जीवन के संघर्षों में संतुलन बनाए रखने के प्रयास से हुई है। दुःखान्त परिणाम की प्रतिक्रिया स्वरूपप्रसाद ने आनन्द और सामंजस्य का सिद्धान्त अपनाया। इस प्रकार रस का पूर्ण परिपाक तो स्कन्दगुप्त नाटक में मिलता ही है पश्चिमी प्रभाव के अनुसार संघर्ष और कार्यव्यापार का भी समुचित विकास हुआ है।

देशकाल या वातावरण जितना पश्चिमी नाटकों में पाया जाता है, उतना संस्कृत नाटकों में नहीं। प्रसाद ने स्कन्दगुप्त में देशकाल के चित्रण में विशेष अभिरुचि दिखाई है, जैसे प्रथम अंक में—उज्जयिनी में गुप्त साम्राज्य का स्कंधावार.....।'

वर्जित दृश्यों का स्कन्दगुप्त नाटक में समावेश है जो पाश्चात्य प्रभाव का सूचक है। उदाहरण के लिए—युद्ध, मृत्यु, आलिंगन, चुम्बन, स्नान आदि दृश्यों का प्रदर्शन स्वतन्त्रतापूर्वक किया गया है। नाटक के आरम्भ में पृथ्वीसेन, महाप्रतिहार और दण्डनायक आत्महत्या करते हैं। नाटक के अन्त में विजया आत्महत्या करती है। युद्ध तथा रक्तपात के अनेक दृश्य भरे पड़े हैं।

ऐतिहासिक नाटकों में समसामयिकता का चित्रण पाश्चात्य नाटकों को सामने रखकर किया गया है। नारी स्वातन्त्र्य आधुनिक काल की देन है। स्कन्द की क्षमाशीलता, त्यागशीलता एवं देश भक्ति गाँधीवाद के प्रभाव के कारण है। शर्वनाग की पत्नी रामा सदृश सामान्य नारी को एक आदर्श पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। यह आधुनिक जनतन्त्रवाद का प्रभाव है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसाद की नाट्यकला प्राच्य और पाश्चात्य नाट्य शैलियों के मुख्य उपकरणों की मिलनभूमि है। एक ओर पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व और शील वैचित्र्य तथा नाटकीय सक्रियता है तो दूसरी ओर रस विधान, एक ओर नायक और प्रतिनायक की नियोजना भारतीय परम्परा के अनुरूप की गई है तो दूसरी ओर देशकाल का चित्रण पश्चिमी नाटक के अनुरूप हुआ है।

काव्यमयता, हास्य-योजना आदि भारतीय नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार है तो वर्जित दृश्यों का आयोजन पश्चिमी नाटक के प्रभाव का प्रतिफल है। भारतीय शैली की विशेषताओं के चिह्न जो उनके नाटकों में पाये जाते हैं वे भग्नावशेष के रूप में नहीं नव-विकास के रूप में तथा समन्वय का आदर्श लिये हुए हैं। कुल मिलाकर प्रसाद के नाटकों की आत्मा भारतीय है।

### (ग) स्कन्दगुप्त में इतिहास और कल्पना

कालजयी साहित्य की धारा इतिहास और कल्पना के दो विषम कूलों की दूरियों को समेटते हुए अनादिकाल से अनन्तता के अथाह रत्नाकार की दिशा में प्रवाहित होती रहती है। इतिहास यदि अपने आप में घटित यथार्थ का एक अंश होता है तो कल्पना के कालातीत आयाम उस पर सौन्दर्य की अनेकमुखी रंगच्छवियों के आवरण चढ़ाते रहते हैं। यथार्थ अपनी निकटता में जितना ही दन्तुर, विरूप और आकर्षक होता है कल्पना उसे उतना ही ग्राह्य, सरस और मनोरम बना देती है। यही कारण है कि यथार्थवादी प्रसाद ने अपनी नाट्यकृतियों में समस्त घटना जगत् को एक ऐतिहासिक दूरता के बिन्दु पर प्रतिष्ठित करके देखा है। कल्पना के सम्मिश्रण से इतिहास के घटनात्मक सत्य को और अधिक जीवन्त एवं मार्मिक बनाने का प्रयास किया है। इतिहासकार न होते हुए भी प्रसाद की इतिहास के प्रति विशिष्ट दृष्टि रही है। प्रसाद की इतिहास-सम्बन्धी धारणा हमें 'अज्ञातशत्रु' के 'कथा प्रसंग' तथा 'विशाख' (प्रथम संस्करण) की भूमिका से प्राप्त होती है—

“इतिहास में घटनाओं की प्रायः पुनरावृत्ति होते देखी जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इसमें कोई नयी घटना होती ही नहीं। किन्तु असाधारण नयी घटना भी भविष्यत् में फिर होने की आशा रखती है। मानव समाज की कल्पना का भण्डार अक्षय है, क्योंकि वह इच्छा शक्ति का विकास है। इन कल्पनाओं का, इच्छाओं का मूल सूत्र बहुत ही सूक्ष्म और अपरिस्फुट होता है। जब वह इच्छा-शक्ति किसी व्यक्ति या जाति में केन्द्रीय भूत होकर अपना सफल या विकसित रूप धारण करती है, तभी इतिहास की सृष्टि होती है। विश्व में जब तक कल्पना इयत्ता को नहीं प्राप्त होती, तब तक वह रूप परिवर्तन करती हुई पुनरावृत्ति करती ही जाती है। समाज की अभिलाषा अत्यन्त तीन स्रोत वाली है। पूर्वकल्पना के पूर्ण होते-होते एक नयी कल्पना उसका विरोध करने लगती है, और पूर्व कल्पना कुछ काल तक ठहरकर, फिर होने के लिए अपना क्षेत्र प्रस्तुत करती है। इधर इतिहास का नवीन अध्याय खुलने लगता है। मानव समाज के इतिहास का इसी प्रकार संकलन होता है।” (अज्ञातशत्रु, कथा प्रसंग, पृ. 7)

“इतिहास का अनुशीलन किसी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है...क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारे जलवायु के अनुकूल जो हमारी जातीय सभ्यता है, उससे बढ़कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं इसमें हमें पूर्ण सन्देह है।..... मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से जन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।” —(विशाखा प्र. सं. की भूमिका)

स्पष्ट है कि प्रसाद का इतिहास सम्बन्धी चिन्तन व्यापक और संश्लिष्ट है। उन्होंने इतिहास को अतीत की स्थूल भौतिक जीवन की घटनाओं का एक आलेख मात्र न कहकर उसे आत्मा की अभिव्यक्ति कहा है। प्रसाद के सम्पूर्ण चिन्तन में सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का आग्रह रहा है। उन्होंने अपने नाटकों में अतीत का प्रत्यक्षीकरण किया है और वर्तमान को प्रबोध दिया है। अपनी संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को बनाये रखने के लिए इतिहास को बार-बार सामने रखना आवश्यक है। अतीत के दर्शन से वर्तमान की समीक्षा, संशोधन और दिशा-निर्देशन सहज हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि इतिहास के ऐसे पुनराख्यान के लिए प्रसाद ने कल्पना पर भी बल दिया है। यह अपने आप में एक सुखद विस्मय का विषय है कि कल्पना के अतिशय आवेग ने कहीं भी तथ्यपूर्ण इतिहास की घटनाओं पर हावी होने का

प्रयास नहीं किया है। चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु, राज्यश्री एवं ध्रुवस्वामिनी प्रभृति उनके सभी नाटकों पर यह तथ्य शत-प्रतिशत लागू होता है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में कल्पना के कारण अनेक संवेदना प्रवण पात्रों की भावुकता जहाँ जलदश्रु नहीं होने पायी है वहाँ राजनीति एवं कूटनीतिक प्रवञ्चना से भरे कथानक में किसी प्रकार की आत्यन्तिक बौद्धिकता को पनपने का अवकाश भी नहीं मिल पाया है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इस नाटक में कल्पना ने जहाँ भावत्व और बुद्धितत्व में संतुलन स्थापित किया है, वहाँ घटना क्रम को नितान्त ऐतिहासिक निर्जीवता से भी बना लिया है।

'स्कन्दगुप्त' नाटक के वस्तुस्रोत की दृष्टि से प्रसाद ने ऐतिहासिक स्रोत को ग्रहण किया है। सर्वप्रथम यहाँ उन तथ्यों का विवेचन करेंगे जिनका कथन अनेक देशी-विदेशी विद्वानों ने किया है और जो प्रेरणारूप में प्रसाद के सम्मुख रहे होंगे—

- (1) **श्री आर. डी. बनर्जी** कृत 'दि एज ऑफ दी इम्पीरियल गुप्ताज' के अनुसार सम्राट कुमार गुप्त एक विलासी शासक था तथा महाराजकुमार गोविन्द गुप्त की मृत्यु स्कन्दगुप्त के जीवन काल में हो गई थी।
- (2) **श्री हेमचन्द्र चौधरी** कृत 'पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐनशेट इण्डिया' के अनुसार कुमार गुप्त की अनेक प्रशंसात्मक उपाधियाँ थीं। स्कन्द की वीरता और योग्यता की धाक सम्राट के समय में ही थी।
- (3) **फ्लीट** कृत 'कॉरपस इंस्क्रिप्शन्स इण्डीकैरम' के अनुसार सम्राट कुमार गुप्त ने पुष्यमित्रों से युद्ध किया था और उनको पराजित कर स्कन्दगुप्त शासक बना। उसकी पदवी, 'परम भट्टारक महाराजधिराज' थी और वह क्षितिज, शतपति भी थी। उसने साम्राज्य का विभाजन प्रान्तों में कर प्रान्तीय शासक नियुक्त किए और इस प्रकार सौराष्ट्र, अंतर्वेद व कौशल में क्रमशः पर्णपद, शर्वनाग व भीमवर्मा की नियुक्ति की गयी। फ्लीट ने देवकी को स्कन्द की माता कहा है।
- (4) **सोमदेव-कृत** 'कथा सरित्सागर' के अनुसार उज्जैन के शासक महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य ने म्लेच्छों का संहार किया था और वह उज्जयिनी भी गया था।
- (5) **श्री राधागोविन्द बसक** कृत 'द हिस्ट्री ऑफ नॉर्थ ईस्टर्न इण्डिया' के अनुसार पृथ्वी सेन पहला मंत्री था जिसे सम्राट कुमारगुप्त ने महाबलाधिकृत बना दिया था।
- (6) **श्री वासुदेव उपाध्याय** कृत गुप्त साम्राज्य के इतिहास के अनुसार मालव नरेश बन्धुवर्मा स्वतन्त्र शासक नहीं, सम्राट कुमारगुप्त का प्रतिनिधि शासक था।
- (7) भितरी और जूनागढ़ के लेखों के आधार पर स्कन्द की चरित्र-विषयक विशिष्टताओं का विशद विवेचन किया जा सकता है।
- (8) **श्री के. बी. पाठक**, विजयचन्द्र मजुमदार, भिंडे, काले, विंसेट स्मिथ आदि लेखक कालिदास को गुप्तकालीन मानते हैं।
- (9) **डॉ. भाऊदा जी** कालिदास और मातृगुप्त को एक ही व्यक्ति मानते हैं।

प्रसाद जी ने उपर्युक्त तथ्यों को संकेत रूप में अपने 'स्कन्दगुप्त' की घटनाओं के निर्माण में अपनाया है। इन्हीं ऐतिहासिक बातों का अनुशीलन करके इन्होंने इस नाटक के प्रथम संस्करण के परिशिष्ट में इसकी

आधारभूमि के सम्बन्ध में सविस्तार विचार किया है। उन्होंने मगध का गुप्त राजवंश, मालव का राजवंश, विक्रमादित्य तथा कालिदास नामक उपशीर्षकों के अन्तर्गत अपने इस नाटक के ऐतिहासिक आधार को स्पष्ट किया है।

- (1) **मगध का गुप्त राजवंश**—इस वंश के पाँचों सम्राटों—समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य, स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य और पुरगुप्त प्रकाशादित्य का उल्लेख नाटक में हुआ है। भारत-विजेता सम्राट समुद्रगुप्त ने सन् 335 से सन् 385 तक राज्य किया। इनके पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य—पाटलिपुत्र के विक्रमादित्य का शासन-काल सन् 385 से 413 तक रहा। इनके पुत्र कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य ने सन् 413 से सन् 455 तक राज्य किया। इनका पुत्र स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य उज्जयिनी का द्वितीय विक्रमादित्य-महान् वीर था और उसने 455 से सन् 467 तक राज्य किया। उसके चाँदी के सिक्कों पर 'परम भागवत श्री विक्रमादित्य स्कन्दगुप्त' अंकित है। उसके पश्चात् उसका विमाता-पुत्र पुरगुप्त प्रकाशादित्य गद्दी पर बैठा जिसने केवल दो वर्ष शासन किया।
- (2) **मालव का राजवंश**—इस वंश के नरवर्मा, विश्वकर्मा, बन्धुवर्मा और भीमवर्मा का उल्लेख स्कन्द गुप्त में हुआ है। मालवराज नरवर्मा सिंहवर्मा का पुत्र था जो गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के समकालीन था। मन्दसौर में प्राप्त सन् 424 के शिलालेख के अनुसार नरवर्मा और विश्वकर्मा स्वतंत्र मालवेश थे। 'गंगाधर' के शिलालेख में भी विश्वकर्मा स्वतंत्र नरेश के रूप में अंकित है। विश्वकर्मा की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र बन्धुवर्मा मालव के सिंहासन पर बैठा और गुप्त सम्राट कुमारगुप्त महेन्द्रगुप्त के अधीन हुआ। विश्वकर्मा का छोटा पुत्र भीमवर्मा संभवतः कौशाम्बी का शासक था।
- (3) **विक्रमादित्य**—इस सम्बन्ध में प्रसाद ने अत्यधिक विस्तार के साथ विचार किया है। सारांश इस प्रकार है—
  - (क) चन्द्रगुप्त द्वितीय का नाम तो चन्द्रगुप्त था पर उसकी उपाधि विक्रमादित्य थी। उसने सौराष्ट्र के शकों को पराजित किया। 'शकारि' होना विक्रमादित्य होने के लिए आवश्यक था।
  - (ख) कथा सरित्सागर में लिखा है—'विक्रमादित्य इत्यासीद्राजा पाटलिपुत्रके।'
  - (ग) ईसवी पूर्व पहली-शताब्दी में एक विक्रमादित्य हुए। स्कन्दगुप्त तीसरा विक्रमादित्य था।
  - (घ) कुमारगुप्त के चाँदी के सिक्कों पर 'परम भागवत महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य' स्पष्ट मिलता है। उसके शिलालेख से प्रकट है कि गुप्त-कुल लक्ष्मी विचलित थी, म्लेच्छों और हूणों से आर्यावर्त आक्रान्त था। अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए स्कन्दगुप्त ने पृथ्वी पर सो-सो कर रातें व्यतीत की थीं। जूनागढ़ के शिलालेख द्वारा यह प्रकट है कि हूणों के साथ युद्ध में अपने विकट पराक्रम द्वारा धरा को विकसित करने वाला तथा सौराष्ट्र के शकों का मूलोच्छेदन करके पर्णदत्त को वहाँ का शासक नियुक्त करने वाला स्कन्दगुप्त ही था।
  - (ङ) स्कन्द को सौराष्ट्र के शकों और तोरमाण के पूर्ववर्ती हूणों से लगातार युद्ध करना पड़ा तथा उसका विमाता-पुत्र पुरगुप्त भी उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचता था। ऐसी स्थिति में प्राचीन

राजधानी पाटलिपुत्र से दूर एक केन्द्रस्थल में राजधानी स्थापित करना सर्वथा आवश्यक था। इसलिए वर्तमान मालव की मौर्यकाल की अवन्ति नगरी को ही चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य का केन्द्र बनाया और शक तथा हूणों को परास्त करके उत्तरी भारत से हूणों तथा शकों का राज्य निर्मूल कर विक्रमादित्य की उपाधि धारण की।

- (4) **कालिदास**—प्रसाद ने मातृगुप्त और कालिदास को एक ही व्यक्ति मानते हुए उसे स्कन्दगुप्त का समकालीन माना है। इस सम्बन्ध में प्रसाद ने लगभग दो तर्क प्रस्तुत किये हैं। उनके तर्कों का सारांश इस प्रकार है—

राजतरंगिणी में एक विक्रमादित्य का वर्णन है जिसने प्रसन्न होकर देश का राज्य 'मातृगुप्त' नाम के एक कवि को दे दिया था। डॉ. भाऊदा का मत है कि मातृगुप्त ही कालिदास है। मातृगुप्त कालिदास तो थे, परन्तु काव्यकर्ता कालिदास—द्वितीय और थे। प्रवरसेन मातृगुप्त और विक्रमादित्य ये परस्पर समकालीन (छठी शताब्दी) माने जाते हैं। ...कुमारदास का सिंहल का राजा उसी काल में होना, सिंहल में कालिदास के जाने की रूढ़ि का उस देश में माना जाना, उधर चीनी यात्री हुएन्साँग द्वारा दादा गुरु मनोरथ का कालिदास द्वारा हराये जाने का उल्लेख, दिङ्नाग और कालिदास का द्वन्द्व, विक्रमादित्य और मातृगुप्त की कथा का राजतरंगिणी में उल्लेख, हूण राजकुल में 'सुगपून' के अनुसार विग्रह, काश्मीर युद्ध की देखी हुई घटना—ये सब बातें आकर एक सूत्र में ऐसी मिल जाती हैं कि दूसरे काव्यकार कालिदास को मातृगुप्त मानने में संकोच नहीं होता है...! मातृगुप्त के कालिदास होने में अनुमान का विशेष सम्बन्ध है, हो सकता है कि आगे चलकर कोई प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिल जाए परन्तु मुझे उनके लिए कोई आग्रह नहीं। इसलिए हमने नाटक में मातृगुप्त का ही प्रयोग किया है।

इस प्रकार प्रसाद जी ने उपर्युक्त विवादास्पद विषयों पर अपना स्पष्ट मत दिया है कि इसके उपरान्त इस नाटक के सम्बन्ध में कुछ निजी मान्यताएँ भी प्रस्तुत की हैं—

“विक्रमादित्य की मृत्यु के उपरान्त मातृगुप्त काश्मीर राज्य छोड़ देता है और वही हाल सिंहल के कुमार धातुसेन का भी है अतः इस नाटक में धातुसेन भी एक पात्र है। बन्धुवर्मा, चक्रपालित, पर्णदत्त, शर्वनाग, भटार्क, पृथ्वीसेन, खिंगिल प्रख्यात कीर्ति भीमवर्मा, गोविन्दगुप्त सभी पात्र ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। अनन्तदेवी का स्पष्ट उल्लेख पुरगुप्त की माता के रूप में मिलता है और यही पुरगुप्त स्कन्दगुप्त के बाद शासक हुआ। स्कन्दगुप्त की माता का नाम देवकी रखा गया है और स्कन्दगुप्त के एक शिलालेख में 'हतरिपुरिव', 'कृष्णो देवकीम्युपेत' उल्लेख भी मिलता है। देवसेना और जयमाल वास्तविक और कल्पित पात्र दोनों हो सकते हैं। विजया, कमला, रामा और मालिनी जैसी किसी दूसरी नामधारिणी स्त्री की भी उस काल में सम्भावना है। तब भी वे कल्पित हैं।”

यद्यपि प्रसाद ने अपने नाटक 'स्कन्दगुप्त' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विस्तार से अपने विचार व्यक्त किए हैं, तथापि कुछ समीक्षक इसे सर्वथा अनैतिहासिक नाटक मानते हैं। इन विद्वानों का कहना है कि 'स्कन्दगुप्त' का ऐतिहासिक आधार प्रामाणिक नहीं है। परमेश्वरीलाल गुप्त के शब्दों में—“स्कन्दगुप्त के राज्यकाल के सम्बन्ध में ऐसी सामग्री प्राप्त नहीं है जिससे इतिहास का स्वरूप किसी प्रकार स्थिर आधार पर खड़ा हो सके।...आज जो पुरातात्विक सामग्री हमारे सम्मुख उपस्थित है, उससे इस बात में सन्देह उपस्थित हो गया है कि स्कन्दगुप्त कुमारगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र अथवा वैध उत्तराधिकारी था। स्कन्दगुप्त का

जो अभिलेख भितरी (जिला गाजीपुर) में पाया गया है उसमें उसने अपने पिता तथा सम्पूर्ण पितामहों की सूची दी है। पर पिता के नाम के बाद उसमें माता का नाम नहीं दिया है।...निस्सन्देह ही उनके पीछे कोई सामाजिक अथवा पारिवारिक रहस्य अवश्य है। जब तक ऐसी कोई बात न हो जो समाज अथवा परिवार में उसकी स्थिति को ही न बताती हो, तब तक कोई व्यक्ति अपनी माता का गौरव मानने में संकोच न करेगा। यह इस सन्देह को पुष्ट करता है कि स्कन्दगुप्त की माँ राज परिवार की नहीं थी और उसको राजमहिषी अथवा महिषी पद प्राप्त नहीं था। इस प्रकार स्कन्द किसी भी प्रकार राज्य पाने का अधिकारी न था। बिना अधिकारी हुए ही उसने पराक्रम से ही राज्याधिकार प्राप्त किया था। स्कन्द को राजाधिकार प्राप्त करने के लिए राजकुमारों से संघर्ष करना पड़ा था पर वह संघर्ष पुरगुप्त से न होकर घटोत्कच से हुआ था...तुमैन (जिला गुना, मध्य भारत) से एक खंडित शिलालेख प्राप्त हुआ है जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि घटोत्कच गुप्त प्रथम कुमारगुप्त का पुत्र था।...स्कन्द के पश्चात् स्वयं पुरगुप्त के शासक होने का कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है। प्रसाद जी ने कुमारगुप्त को विलासी शासक के रूप में अंकित करके उसके प्रति अन्याय किया है।...पर्णदत्त, चक्रपालित, बन्धुवर्मा, मातृगुप्त, शर्वनाग, भटार्क पृथ्वीसेन आदि पात्र ऐतिहासिक अवश्य है पर जिस रूप में प्रस्तुत किए गए हैं उनका ऐतिहासिक अस्तित्व संदिग्ध है। नारी पात्रों में अनन्तदेवी के अतिरिक्त सभी कल्पित हैं।” (प्रसाद नाटक, पु. 157-166)

इस प्रकार स्कन्दगुप्त नाटक की भूमिका, अन्य ऐतिहासिक लेखों तथा विद्वानों के मतों को पढ़ने से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रसाद जी की ऐतिहासिक अन्तर्दृष्टि काल के आवरण को चीरकर ऐतिहासिक सत्यों के आकलन एवं निर्माण की विपुल सामर्थ्य रखती है। अपनी साहित्यिक परिधि में उद्देश्य पूर्ति की दृष्टि से कल्पना का अवलम्बन ले उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं में परिवर्तन-परिवर्द्धन भी किया है। श्री शिवप्रसाद सिंह ने कहा भी है—‘इतिहास यदि उनकी स्थापनाओं से सामंजस्य रखता है तो वे उनकी अभ्यर्थना करते हैं। यदि ऐतिहासिक मान्यताएँ उनके पक्ष के विरोध में जाती हैं तो वे उनका खंडन करने के लिए इतिहास की शरण लेते हैं और यदि खंडन नहीं कर पाते तो उन्हें निराधार कहने में भी संकोच अनुभव नहीं करते। एक बात का प्रसाद अवश्य हमेशा ध्यान रखते हैं कि उनकी सुनिश्चित मान्यताएँ किसी न किसी प्रकार प्रश्रय पा सकें। अपनी मान्यताओं के प्रचार के लिए नाटकों से ज्यादा सुविधापूर्ण और दूसरी काव्य-विधा नहीं, तटस्थ और स्थित-प्रज्ञ रहकर वे अपने पात्रों के माध्यम से अपनी विचारधाराओं का बलपूर्वक प्रचार कर सके, जो उन्हें अभीष्ट था। इस प्रकार अपने सांस्कृतिक या ऐतिहासिक नाटकों में प्रसाद ने स्वोपलब्ध सत्य को अभिव्यक्ति दी। इसीलिए स्कन्दगुप्त में भी प्रसाद ने कल्पना और इतिहास का सुन्दर समन्वय किया है।

‘स्कन्दगुप्त’ नाटक में कहीं घटनाओं को अधिक मनोरंजक एवं कौतूहलवर्धक बनाने के लिए कल्पना का आँचल पकड़ा है तो कहीं पात्रों के चरित्र को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए। जैसा कि डॉ. रामअवध द्विवेदी का कहना है ‘ऐतिहासिक नाटकों में चरित्र-चित्रण सम्बन्धी कुछ विशेष सुविधाएँ तथा सीमाएँ होती हैं। प्रमुख पात्र इतिहास के व्यक्ति होते हैं और उनके स्वरूप से प्रायः सभी लोग कुछ-न-कुछ पूर्व से ही अवगत रहते हैं। अतः लेखक की मौलिकता केवल इस बात में दिखाई पड़ती है कि वह इन पात्रों को प्रस्तुत करते हुए कुछ नवीन प्रवृत्तियों, उद्देश्यों तथा मानसिक अवस्थाओं का समावेश इस प्रकार करता है कि साधारणीकरण के अभीष्ट की सिद्धि होती है। इन्हीं मानवीय गुणों के कारण दर्शक और नाटक के

पात्रों में तादात्म्य उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ, चाणक्य के चरित्र में प्रसाद ने सुवासिनी के प्रति स्नेहाकर्षण का समावेश करके उसमें एक ऐसी मानवीय विशेषता सन्निविष्ट कर दी है जिससे वह सर्वसाधारण के लिए आकर्षक बन गया है। इस प्रकार के सूक्ष्म परिवर्तन के अभाव में पात्र केवल इतिहास के पुतले मात्र रह जाते हैं। दूसरी ओर यदि नाटककार इतिहास में अंकित पात्रों और उनके चरित्र को आमूल बदल देता है तब उस पर अज्ञान का दोष सहज ही लगाया जा सकता है। इसी मानदंड से प्रसाद के नाटकों के पात्रों की परीक्षा होनी चाहिए। प्रमुख पात्र प्रायः सभी ऐतिहासिक महापुरुष हैं और उनका रूप खड़ा करने में लेखक को यथोचित सफलता मिली है। स्वयं प्रसाद ने 'स्कन्द-विक्रमादित्य' के प्रथम संस्करण के परिशिष्ट में लिखा है—'पात्रों की ऐतिहासिकता के विरुद्ध चरित्र की सृष्टि जहाँ तक सम्भव हो सका है न होने दी गई है। फिर भी कल्पना का अवलम्बन लेना ही पड़ा है, केवल घटना की परम्परा ठीक रखने के लिए। इस प्रकार नाटक में कथावस्तु को सुसम्बद्ध रखने के लिए कुछ कल्पित घटनाएँ और पात्र भी जोड़े गये हैं तथा इनके उपयोग से नाटक का सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ गया है। स्कन्दगुप्त के सभी पात्र ऐतिहासिक नहीं हैं। कुछ पात्र ऐसे हैं जिनके नाम और चरित्र इतिहास में उपलब्ध होते हैं जैसे स्कन्दगुप्त, कुमारगुप्त, अनन्तदेवी, मातृगुप्त, पर्णदत्त, चक्रपालित और बन्धुवर्मा आदि। कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिनका उल्लेख तो इतिहास में है परन्तु जिनके चरित्र के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी नहीं है जैसे भीमवर्मा, शर्वनाग और पृथ्वीसेन आदि। इस प्रकार पूर्णतया काल्पनिक पात्रों में जयमाला और सांकेतिक काल्पनिक पात्रों में देवसेना, विजया और देवकी को रखा जायेगा।

प्रसाद के सभी नाटकों के नायक ऐतिहासिक हैं और उनका नाम एवं बहुत कुछ वृत्तान्त भी इतिहास में उपलब्ध है। ये नायक या तो इतिहास को अपनी कर्मठता, संकल्पशक्ति या जीवन की प्रतिभा से प्रभावित करते हैं या ऐतिहासिक परिस्थितियों की ठोकर से एक दम ऊँचाई पर पहुँच जाते हैं। प्रस्तुत नाट्यकृति का नायक स्कन्द इसी प्रकार का पात्र है और वह अपने निखरे हुए रूप में अंकित हुआ है। इतिहास में महारानी अनन्तदेवी और उसके पुत्र पुरगुप्त का उल्लेख है। पुरगुप्त राज्य की प्राप्ति केवल अपने बाहुबल और पराक्रम द्वारा करता है। किन्तु प्रसाद ने इसके विपरीत स्कन्दगुप्त को ही उत्तराधिकारी माना है, वही पुरगुप्त को राज्य प्रदान करता है। कुछ इतिहासकारों ने भी यह माना है कि स्कन्दगुप्त ने वीरतापूर्वक पुष्यमित्रों और हूणों का दमन किया और गुप्त साम्राज्य स्कन्द राज्य-काल में नहीं पुरगुप्त के शासन में छिन्न-भिन्न हुआ। प्रसाद जी ने पुरगुप्त के व्यक्तित्व को इतिहास की अपेक्षा बहुत दबा दिया है। स्कन्दगुप्त के व्यक्तित्व के समक्ष उसका व्यक्तित्व अत्यन्त फीका दृष्टिगत होता है। वह अपनी माता अनन्तदेवी के हाथ की कठपुतली मात्र है। इतिहास का पुरगुप्त नाटक के पुरगुप्त के समान माता के अंचल से और मदिरा के प्यालों में ही बँधा नहीं रहा है, कुछ क्रियाशीलता उसने दिखलाई है। इतिहास के अनुसार भीतरी षड्यन्त्रों का नायक वही है, अनन्तदेवी नहीं। किन्तु प्रसाद ने इन समस्त षड्यन्त्रों का केन्द्र उसकी माता अनन्तदेवी को बनाया है। अपने नायक के चरित्र के उत्कर्ष को उभारने के लिए ही पुरगुप्त के चरित्र को अत्यन्त दुर्बल दिखाया है। प्रसाद ने स्कन्द के कारण ही अनन्तदेवी के स्थान पर देवकी को महारानी माना है। देवकी महारानी होकर भी गौण पात्र है। अनन्तदेवी को यद्यपि महारानी का सम्मान प्रसाद ने नहीं दिया किन्तु उसे सबसे अधिक प्रभावशालिनी और तेजस्विनी दिखाकर उसके महत्त्व का प्रतिपादन किया है।



इतिहास में बन्धुवर्मा को अधीन शासक कहा गया है जबकि प्रसाद ने उसे देशहित, राष्ट्र-कल्याण एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से ओत-प्रोत दिखाया है। इस भावना से प्रेरित होकर उसने मालवा का राज्य स्कन्द को समर्पित कर दिया था। बन्धुवर्मा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से कहीं अधिक महत्त्व समष्टिगत स्वतन्त्रता को देता है जिससे उसके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष हमारे सामने आता है। देवसेना आदर्श प्रेम की प्रतिमा है, आत्म-समर्पण, त्याग और स्वाभिमान की भावना उसके चरित्र में कूट-कूट कर भरी है। रामा आदर्श चरित्र है। विजया प्रणयवचिता भयंकर नारी का प्रतीक है, जिसके प्रेम में वासना की उद्दाम सरिता सदैव प्रवाहित रहती है। प्रपंचबुद्धि यथा नाम तथा गुण बौद्ध-धर्म की विकृत साधना का साकार स्वरूप है। मुद्गल संस्कृत नाटकों के विदूषक का अवतार है जो अब हिन्दी नाटकों में प्रायः दुर्लभ है। स्कन्द को इतिहास प्रसिद्ध विक्रमादित्य और मातृगुप्त को कालिदास सिद्ध करने की कल्पना सफल नहीं हुई है। वस्तुतः इन सभी काल्पनिक पात्रों के अर्थपूर्ण तथा प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व ने नाटक के सारे वातावरण में कोमलता और मधुरता तथा उद्देश्यस्थापना में तरलता, आवेग तथा प्राणशक्ति भर दी है।

बहुत सी ऐतिहासिक वार्ताओं को प्रसाद ने छोड़ भी दिया है। इतिहास में पर्णदत्त सौराष्ट्र का गोप्ता (रक्षक अतः प्रान्त पति भी) नियुक्त किया गया था और उसके पुत्र चक्रपालित ने जो कि पिता के बाद गिरिनार का विषयपति हुआ, सुदर्शन झील का पुनरुद्धार कराया था। किन्तु स्कन्दगुप्त में इस वार्ता का बिल्कुल समावेश नहीं है।

कल्पनाश्रित घटनाओं में प्रायः सभी का नाटक में कोई-न-कोई प्रयोजन रहा है। देवसेना की हत्या का प्रयत्न प्रसाद ने इसलिए दिखाया है कि तत्कालीन हासोन्मुख बौद्ध धर्म का विकृत स्वरूप स्पष्ट हो सके। कुम्भा के बाँध टूटने का प्रकरण नायक स्कन्द के जीवन में गहनतम संघर्ष की विद्यमानता दिखाने के लिए जुटाया है। इसी प्रकार धातुसेन की सहायता से मातृगुप्त का स्कन्दगुप्त के पास पहुँचना, अनन्तदेवी, भटार्क और प्रपंचबुद्धि का षड्यन्त्र, जयमाला, देवसेना, बन्धुवर्मा और विजया से सम्बन्धित सभी घटनाएँ, शर्वनाग द्वारा देवकी के वध की योजना, भटार्क और अनन्तदेवी के द्वारा हूणों से गुप्त-सन्धि की योजना, देवकी की समाधि की योजना, पर्णदत्त व देवसेना के कार्य, स्कन्द का आगमन, विजया की प्रवंचना व आत्महत्या, विजया के रत्नगृह की प्राप्ति, पुनः सैन्य संगठन, प्रख्यात कीर्ति द्वारा हूण सेना के कार्य में अवरोध, धातुसेन का अनन्तदेवी, पुरगुप्त और हूण सेनापति को बन्दी कर लेना, पर्णदत्त की मृत्यु, खिंगिल की हार तथा अन्तिम और श्रेष्ठतम घटना, देवसेना की बिदा सभी घटनाएँ काल्पनिक होते हुए भी वास्तविक जान पड़ती हैं। केवल एक घटना खटकती है और वह है मातृगुप्त और मालिनी की कथा। इस घटना का न तो कोई ऐतिहासिक आधार है और न नाटक की कथावस्तु के विकास में ही कोई उपयोगिता सिद्ध होती है। फिर भी प्रसाद ने ऐसी कई छोटी-मोटी स्थितियों की कल्पना से वस्तु विन्यास में जीवंतता लाने का प्रयास किया है।

ऐतिहासिक नाटककार का यह दायित्व है कि वह ऐतिहासिक नाटक की रचना के समय **संकलनत्रय** के निर्वाह का ध्यान रखे अन्यथा हास्यास्पद स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। काल-विशेष के रीति-रिवाज, रहन-सहन और सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्थाएँ-सभी नाटक की पृष्ठभूमि में सहयोग देते हैं। प्रसाद गुप्तकालीन इतिहास के मर्मज्ञ थे। इसलिए उनके अन्य ऐतिहासिक नाटकों की तरह 'स्कन्दगुप्त' में भी संकलन-त्रय का प्रामाणिक प्रयोग मिलता है। संकलन-त्रय का पहला तत्त्व है-कार्य। कार्य की एकता से

तात्पर्य एक समस्या से नाटक के सारे कथानक का जुड़ा रहना है। इस नाटक में स्कन्दगुप्त के सम्मुख तीन समस्याएँ हैं—विदेशी आक्रमण, गृहकलह और प्रेम का अन्तर्द्वन्द्व। प्रथम दो समस्याएँ ऐतिहासिक हैं और तीसरी नाटककार की कल्पना प्रसूत। स्कन्दगुप्त का जैसा चरित्र इतिहास में मिलता है उससे प्रसाद जी के उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती थी इसलिए उन्होंने काल्पनिक समस्या उठाकर अपने उद्देश्य की पूर्ति की है। सभी ऐतिहासिक और काल्पनिक पात्र समस्याओं के इर्द-गिर्द घूमते हुए दिखाई देते हैं। संकलन-त्रय का दूसरा अंग 'देश' से तात्पर्य है—स्थान। स्थान की एकरूपता के लिए आवश्यक है कि नाटक में घटित घटनाओं के स्थल बिखरे हुए न हों। स्कन्दगुप्त नाटक में मगध, मालव, गान्धार की घाटी, उज्जयिनी, सौराष्ट्र आदि स्थानों के नाम आये हैं। ये स्थल ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हैं। वास्तव में स्थान की दृष्टि से ऐतिहासिक रचना में कल्पना का विशेष अवकाश रहता ही नहीं। ये स्थल ही तो रचना को ऐतिहासिक परिवेश प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से प्रसाद जी ने भली-भाँति इतिहास का निर्वाह किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से 'काल' का निर्वाह भी स्कन्दगुप्त में अच्छा है। यह नाटक भारतीय इतिहास के गुप्तकाल से सम्बन्धित है। नाटककार ने उसके सम-सामयिक वातावरण तथा तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक परिस्थितियों का अंकन भली-भाँति किया है। परस्पर की कलह, ईर्ष्या आदि दुष्प्रवर्तियाँ इतिहास की भाँति ही चित्रित की गई हैं। तत्कालीन गुप्तवंशीय शासकों की विलासिता का चित्रण भी कई प्रसंगों में हुआ है—'यवनों से उधार ली हुई सभ्यता नाम की विलासिता के पीछे आर्य जाति उसी तरह पड़ी है जैसे कुलवधू को छोड़कर कोई नागरिक वेश्या के चरणों में। देश पर बर्बर हूणों की चढ़ाई और तिस पर भी यह निर्लज्ज आमोद। जातीय जीवन के निर्वाणोन्मुख प्रदीप का यह दृश्य है।' राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख करते समय विदेशी आक्रान्ताओं के सम्बन्ध में उद्गार मिलते हैं। इसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी अन्तर्विद्रोह था। ब्राह्मण व बौद्ध दोनों एक-दूसरे के विरोधी थे। धार्मिक भावनाएँ धन के हाथों बिक चुकी थी। काल विशेष में प्रचलित भाषा का अनुकरण भी वातावरण में समीपता उत्पन्न करता है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में भाषा, वेशभूषा का भी उचित ध्यान रखा गया है। इस प्रकार इस नाटक में 'कार्य समय-स्थान' के समन्वयन में कोई विशेष बाधा नहीं आई।

रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार का विवेचन किया जाए तो लगता है कि रंगमंच पर ऐतिहासिकता को दूसरी तरह की अपेक्षाएँ होती हैं। नाटक के कथ्य और लक्ष्य के अनुरूप दृश्यबंध की परिकल्पना, पात्रों का पहरावा, संगीत-नृत्य का प्रवाह, संस्कृतनिष्ठ भाषा होने के कारण पूरा और सही उच्चारण ऐतिहासिकता के परिदृश्य को जीवंत रख सकते हैं। स्कन्दगुप्त नाटक में ऐसे विचित्र प्रसंगों का भी विधान किया गया है जिनमें प्रसाद जी का चमत्कार के प्रति मोह दिखाई देता है। असल में प्रसाद जी ने अपने प्रस्तुतीकरण को प्रभावशाली बनाने के लिए पारसी थिएटर की रंगयुक्तियों को अपनाया है।

'लहरों के राजहंस' की भूमिका में मोहन राकेश ने ऐतिहासिक नाटक में इतिहास के स्वरूप पर विचार करते हुए लिखा है—'इस तरह साहित्य अपनी यथातथ्य घटनाओं में व्यक्त नहीं होता, घटनाओं में जोड़ने वाली ऐसी कल्पनाओं में व्यक्त होता है जो अपने ही एक नये और अलग रूप में इतिहास का निर्माण करती है। यह निर्माण रूढ़िगत अर्थ में इतिहास नहीं, उस इतिहास की खोज के लिए शोध पुस्तकों की ओर जाना चाहिए।' इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रसाद 'एक नए और अलग रूप में इतिहास' बनाने में एक सीमा तक सफल रहे। उनकी अर्थपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण कल्पनाएँ ऐतिहासिक आधार

को युगीन परिप्रेक्ष्य देने में समर्थ हैं। सारतः हम यह भी कह सकते हैं कि प्रसाद ने अपनी कृतियों में इतिहास और कल्पना के तत्त्वों को परम्परित रूप की अपेक्षा अभिनव दृष्टि से रूपायित किया है।

#### संदर्भ-ग्रन्थ

- |  |                             |
|--|-----------------------------|
| (1) प्रसाद के नाटक : स्वरूप और संरचना                  | डॉ. गोविन्द चातक            |
| (2) प्रसाद की नाट्य कला                                | डॉ. रामसेवक पाण्डेय         |
| (3) हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और अध्ययन                  | डॉ. गिरिश रस्तोगी           |
| (4) प्रसाद के नाटकों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विवेचन | डॉ. जगदीश जोशी              |
| (5) प्रसाद का नाट्य साहित्य : परम्परा एवं प्रयोग       | डॉ. हरीन्द्र                |
| (6) नाट्य निबन्ध                                       | डॉ. दशरथ ओझा                |
| (7) प्रसाद के नाटक : रचना और प्रक्रिया                 | डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव |
| (8) प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन               | डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा    |
| (9) 'काव्य, कला और निबन्ध में रंगमंच' शीर्षक निबन्ध    | जयशंकर प्रसाद               |
| (10) आधुनिक हिन्दी नाटक                                | डॉ. नगेन्द्र                |
| (11) प्रसाद-युगीन नाटक                                 | डॉ. रमेश खनेजा              |
| (12) प्रसाद की नाट्य कला                               | रामकृष्ण शुक्ल शिलीमुख      |

#### सम्भावित प्रश्न

- (1) प्रसाद के नाटकों में भारतीय और पाश्चात्य नाट्य-कला का समन्वय मिलता है—इस कथन के आधार पर 'स्कन्दगुप्त' नाटक की समीक्षा कीजिए।
- (2) 'स्कन्दगुप्त' का नायक कौन है? युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।
- (3) 'स्कन्दगुप्त' नाटक की गति-योजना पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए।
- (4) 'स्कन्दगुप्त' नाटक की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए इस नाटक में इतिहास और कल्पना की समीक्षा कीजिए।
- (5) नाटकीय तत्त्वों के आधार पर 'स्कन्दगुप्त' की समीक्षा कीजिए।

## पगला घोड़ा

(बादल सरकार)

डॉ. जयदेव तनेजा  
रीडर, हिन्दी विभाग  
आत्माराम सनातन धर्म कॉलेज  
दिल्ली विश्वविद्यालय

### (क) बंगला नाट्य-साहित्य और बादल सरकार

इसमें कोई संदेह नहीं कि बंगला आज की भारतीय रंग-समृद्ध भाषाओं में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषा है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से चैतन्य महाप्रभु के वैष्णव-भक्ति-गीतों की अभिनयपरक नाटकीय अभिव्यक्ति से जन्म लेने वाले 'यात्रा' अथवा 'यात्रा' नामक लोक-नाट्य-रूप को यदि छोड़ दिया जाए तो बंगला नाटक और रंगमंच का इतिहास उन्नीसवीं सदी के मध्य से पीछे नहीं जाता। योगेन्द्र चन्द्रगुप्त लिखित 'कीर्ति विलास' तथा ताराचरण के 'भद्रार्जुन' और रामनारायण तर्करत्न रचित 'कुलीन कुल सर्वस्व' एवं दीनबन्धु मित्र के प्रसिद्ध नाटक 'नील दर्पण' से आरम्भ होकर गिरीश चन्द्र घोष के सामाजिक व्यावसायिक रंगमंच तथा डी.एल. राय के 'राणा प्रताप', 'दुर्गादास', 'नूरजहाँ', 'मेवाड़ पतन', 'शाहजहाँ' एवं 'चन्द्रगुप्त' जैसे ऐतिहासिक नाटकों और कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत 'राजो ओ रानी', 'विसर्जन', 'मालिनी', 'राजा', 'डाकघर', 'मुक्तधारा' तथा 'रक्त करबी' जैसे काव्यात्मक प्रतीक नाटक से होता हुआ बंगला नाटक और रंगमंच अपने समय के उस बदलते हुए खुरदरे और घिनौने यथार्थ से जा टकराया, जहाँ एक ओर द्वितीय विश्वयुद्ध के फलस्वरूप मुनाफाखोरी और कालाबाजारी ने आम आदमी का जीना दूभर कर दिया था और दूसरी ओर बंगाल के कुख्यात अकाल ने नैतिकता और मानवीय मूल्यों को इन्सानी लाशों के अम्बार के नीचे दफन कर दिया था। इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिक दंगों में हुए कत्ले-आम और आजादी के साथ आए विभाजन के अभिशाप और शरणार्थियों के सैलाब ने बंगाल के सामाजिक-आर्थिक ढाँचे तथा पारस्परिक सम्बन्धों के स्वरूप में आमूल चूल परिवर्तन कर दिया। अपने समय की इन जलती हुई सच्चाइयों और जीवन-मरण के बुनियादी सवालों को प्रखर एवं ईमानदार अभिव्यक्ति देने के इरादे से व्यावसायिक रंगमंच के मुकाबले जन-सामान्य के दुःख-दर्द से जुड़े एक समानांतर थियेटर की शुरुआत हुई। उस समय की तमाम जागरूक रंग-प्रतिभाओं ने एकजुट होकर भारतीय-जन-नाट्य-संघ (इप्टा) की नींव डाली और अपने सार्थक रंगकर्म के माध्यम से जनता को सचेत करने का बीड़ा उठाया। अकाल की पृष्ठभूमि पर आधारित विजन भट्टाचार्य के नाटक- 'नवान्न' ने तहलका मचा दिया। इसे नाटककार के साथ मिलकर शम्भु मित्रा ने निर्देशित किया था। कालान्तर में, मार्क्सवाद के प्रति दृढ़ आस्था होने के बावजूद 'इप्टा' से अलग होकर लगातार समर्पित एवं प्रतिबद्ध रंगकर्म करने वालों में उत्पल दत्त और शम्भु मित्रा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उत्पल दत्त ने पहले 'लिटिल थियेटर ग्रुप' और बाद में 'पीपल्स लिटिल थियेटर' द्वारा प्रस्तुत 'अंगार', 'फरारी फौज', 'कल्लोल', 'टिनेर तलवार', 'टोटा', 'छायानट', 'दुःस्वप्नेर नगरी', 'तितुमीर' जैसे अपने मौलिक नाटकों तथा ब्रेख्त, फ्रेडरिक बुल्फ और शेक्सपियर के अनेक नाटकों के बंगला रूपान्तरों/

अनुवादों के भव्य प्रदर्शनों के माध्यम से अपने प्रतिश्रुत विचारों और सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुँचाया। इधर उत्पल दत्त ने धार्मिक और ग्रामीण जनता तक पहुँचने के लिए परम्परित लोक-नाट्य (जात्रा) का भी अपने मकसद के लिए प्रभावपूर्ण इस्तेमाल किया है। 'हिटलर', 'लेनिन', 'हो-ची मिन्ह' जैसे जात्रा-नाटक इसके प्रमाण हैं। इसके दूसरे सीमान्त पर इब्सन और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाटकों के कलात्मक मंचन से शम्भु मित्रा और उनके नाट्य-दल 'बहुरूपी' ने बंगला रंगमंच को अपरिमित समृद्धि और अपूर्व प्रसिद्धि प्रदान की। इसी दौरान, अन्य अनेक नाटककार और नाट्य-दल अपने प्रयोगधर्मी रंगकार्य के बंगला रंगमंच के बहुआयामी विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते रहे हैं। समकालीन जीवन की अर्थहीनता और व्यक्ति के साथ उसके परिवेश के तनावपूर्ण अन्तर्सम्बन्धों के माध्यम से मानव-अस्तित्व के मूलभूत प्रश्नों गम्भीर विश्लेषण और मौलिक एवं प्रभावपूर्ण रंग-शिल्प में उसके जीवन प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से बादल सरकार का नाम और काम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा है।

अपने आरम्भिक जीवन में बादल बाबू का रंगमंच से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहा। बाद में वह एक कामदी-अभिनेता की हैसियत से एक छोटे से नाट्य-दल से जुड़े। इसी समय आपने कुछ कहानियों के नाट्य-रूपान्तर भी किए। शौकिया रंगमंच के लिए लिखे गए आपके आरम्भिक नाटकों में 'सौल्यूशन-एक्स' पहला उल्लेखनीय नाटक है। 1956 में लिखित यह नाटक 'मंकी बिजनेस' नामक फिल्म से प्रभावित था। यही स्थिति 'स्केप गोट' नामक फिल्म पर आधारित इनके अपराध-नाटक 'समवृत्त' की है। 1957 में आप पहली बार विदेश गए और वहाँ के रंगमंच का भरपूर आस्वाद एवं अनुभव लेकर 1959 में लिखित हास्य-नाटक 'बड़ी बुआजी' का अच्छा स्वागत हुआ। 1960 में अन्य अनेक उत्साही रंगकर्मियों के साथ मिलकर इन्होंने 'चक्र' नामक नाट्य-संस्था की नींव डाली और उसके लिए नाटक लिखने लगे। इनका पहला गम्भीर, मौलिक और महत्त्वपूर्ण नाटक 'एवम् इन्द्रजित' 1962 में लिखा गया। एक कविता को छोड़कर इसकी सभी कविताएँ 1957-59 के बीच लन्दन प्रवास के दौरान एक डायरी के रूप में स्वान्तःसुखाय ही लिखी गई थीं। मित्रों के आग्रह पर जब यह रचना (तब तक बादल बाबू इसे नाटक नहीं मानते थे) 1965 में 'बहुरूपी' नामक बंगला की नाट्य-पत्रिका में प्रकाशित हुई तो प्रबुद्ध रंगकर्मियों के बीच इसने काफी हलचल पैदा कर दी। गोविन्द गंगोपाध्याय के निर्देशक में 'शौभनिक' द्वारा इसकी बंगला प्रस्तुति के बाद डॉ. प्रतिभा अग्रवाल कृत इसके हिन्दी अनुवाद को श्यामानन्द जालान (अनामिका), सत्यदेव दुबे (थियेटर यूनिट) और मोहन महर्षि (दिशांतर) ने क्रमशः कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली में सफलतापूर्वक प्रदर्शित करके एक तहलका-सा मचा दिया। विजय तेंदुलकर (मराठी), गिरीश कर्नाड (कन्नड़) और मोहन राकेश (हिन्दी) की तरह बादल सरकार (बंगला) भी राष्ट्रीय स्तर के नाटककार माने जाने लगे।

आधुनिक-विशेषतः बंगाली-मध्यवर्गीय जीवन के बहुआयामी अन्तर्विरोधों, विसंगतियों-विडम्बनाओं और नैतिक-मानसिक संकटों को हल्की-फुल्की और गहन-गम्भीर नाट्याभिव्यक्ति के साथ-साथ बादल सरकार ने आम आदमी के दुःख-दर्द और उस पर होने वाले चहुँतरफा अन्याय एवं अत्याचार को भी बड़े सशक्त और प्रखर स्वरो/बिम्बों में प्रस्तुत किया है। बादल सरकार के वैविध्यपूर्ण बहुसंख्य नाटकों को हम स्पष्टतः तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

- (1) निर्मल हास्य के हल्के-फुल्के मनोरंजक नाटक—'बड़ी बुआजी', 'सौल्यूशन एक्स', 'राम-श्याम-जदु', 'कवि कहानी', 'अबू हसन' और 'बल्लभपुर की रूपकथा' इत्यादि।

- (2) अस्तित्वादी, एक्सर्ड दर्शन और मनोविज्ञान से प्रभावित गहन-गम्भीर एवं चिन्तन-प्रधान नाटक-‘एवं इन्द्रजित’, ‘बाकी इतिहास’, ‘पगला घोड़ा’, ‘सारी रात’, ‘शेष नहीं’ और ‘तीसरी शताब्दी’ (हिरोशिया) इत्यादि।
- (3) मनोशारीरिक रंग-शैली में प्रस्तुत ‘तीसरी रंगमंच’ की तलाश के मंच-मुक्त जन-नाटक-‘जुलूस’, ‘भोमा’, ‘स्पार्टाकस’, ‘बासी खबर’ और ‘प्रस्ताव’ इत्यादि।

बादल सरकार के समकालीन बंगला नाटककारों में यद्यपि धनंजय वेरागी (रजनीगंधा), मोहित-चटर्जी (गिनी पिग), अरुण मुखर्जी (मारीच संवाद), मनोज मित्र (बगिया बाँछराम की) और देबाशीष मजुमदार (ताम्रपत्र) जैसे पुरानी-नई पीढ़ी के कई रचनाकार गम्भीरता से नाट्य-लेखन कर रहे हैं और अन्य प्रादेशिक भारतीय भाषाओं में भी अनेक चर्चित एवं प्रतिष्ठित नाटककार भी मौजूद हैं। लेकिन ‘चक्र’, ‘शताब्दी’ और ‘आंगन-मंच’ जैसी अपनी नाट्य-संस्थाओं और ‘एवम् इन्द्रजित’ जैसे नितान्त व्यक्तिवादी नाटकों से लेकर ‘भोमा’ और ‘प्रस्ताव’ जैसे आम आदमी के नाटकों तक जो विस्तार, वैविध्य और विकास बादल सरकार में देखने को मिलता है-वह अन्यत्र दुर्लभ है। प्रोतोवस्की और शेखनर के रंग-बीज को अपनी भारतीय मिट्टी में रोपकर बादल सरकार ने जो मौलिक तीसरे-रंगमंच का पौधा उगाया था, वह आज वट-वृक्ष की तरह मनोशारीरिक रंग-शैली के रूप में सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के रंगमंच पर अपना व्यापक प्रभाव जमाए हुए हैं। आधुनिक भारतीय रंग-परिदृश्य में बादल सरकार का नाम और काम ऐतिहासिक महत्त्व और लगभग शाश्वत मूल्य का है।

### (ख) पगला घोड़ा : मूल संवेदना

‘एवम् इन्द्रजित’, ‘बाकी इतिहास’, ‘तीसरी शताब्दी’ जैसे गम्भीर और मनोवैज्ञानिक चिन्तन-प्रधान नाटकों की तरह 1968 के आसपास लिखित, 1969 में हिन्दी में अभिमंचित और 1974 में प्रकाशित ‘पगला घोड़ा’ में भी बादल सरकार का मूल सरोकार मध्यवर्गीय शहरी व्यक्ति के जीवन के अन्तर्विरोधों, मृत्यु और आत्महत्या जैसे उलझे हुए सवालों तथा (व्यक्तिगत अथवा सामूहिक) अपराध-बोध से कुंठित मन की बारीक विश्लेषणपरक नाट्याभिव्यक्ति करना रहा है। संवेदना के स्तर पर बादल सरकार अपने गम्भीर बौद्धिक-दार्शनिक तेवर के बावजूद मूलतः एक रोमानी रचनाकार हैं। उनकी इस गहरी रूमनियत के सबसे ज्यादा और प्रत्यक्ष दर्शन ‘पगला घोड़ा’ में ही होते हैं। बादल सरकार स्वयं अपने इस नाटक को ‘प्रेमेर मिष्टि गल्प’ यानी एक मीठी प्रेम कहानी मानते हैं और इस सृष्टि में भला ‘प्रेम’ से अधिक रोमांटिक चीज और क्या हो सकती है?

क्राले के अनुसार, “प्रेम की परिभाषा उतनी ही कठिन है जितनी कि जीवन की परिभाषा है।” प्रेम एक व्यापक और जटिल आवेग है। इसकी व्यापकता का अनुमान इस बात से ही लगाया जा सकता है कि सभी कालजयी रचनाओं का मूलाधार किसी-न-किसी रूप में प्रेम ही है। हमारे यहाँ ‘शृंगार’ को रसराज कहा गया और प्राचीन पेरुवासियों की भाषा ‘किचुआ’ में मूने (प्रेम) के 600 रूप मौजूद हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आनन्द और यंत्रणा को अपने में एक साथ समाहित करने वाला यह संयुक्त-आवेग वास्तव में जीवन की प्रधान परिचालक शक्ति और ऊर्जा का ही पर्याय है। यही कारण है कि ‘पगला घोड़ा’ के चारों नारी चरित्र इसके अभाव में जीवन से ही मुँह मोड़ लेते हैं। बादल सरकार मध्यवर्गीय (विशेषतः बंगाली) जीवन में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के अन्तर्विरोधों के अद्भुत चितरे हैं। ‘पगला घोड़ा’ की मूल संवेदना कस्बाई

(बंगाली) व्यक्ति की भावुक मानसिकता ('मिनमिन-मिनमिन भद्र प्रेम') और पलायनवादी प्रवृत्ति के विविध रूपों की त्रासदी को अपने में समेटे है। शरत्चन्द्र के उपन्यासों के रोमानी प्रेमियों की तरह बादल सरकार के इस नाटक के पुरुष चरित्र भी कटु यथार्थ का सामना करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। संयोग से, अलग-अलग कारणों के बावजूद, चारों पुरुष पात्र अकेले हैं और अपेक्षाकृत अधिक साहसी होने के बावजूद चारों प्रेमिकाएँ आत्महत्या कर चुकी हैं। इनके जीवन-इतिहास को देखकर इब्सन का यह कथन पूरी तरह सही प्रतीत होता है कि "किसी भी शब्द में आज के दिन इतना झूठ और बेईमानी नहीं भरी है जितनी कि 'प्रेम'—इस छोटे से शब्द में।" 'पगला घोड़ा' के दो चरित्रों के शब्दों में कहें तो—

“सातू : (सोचकर) मतलब—प्रेम बेवकूफ लोग ही करते हैं?

शशि : नहीं...प्रेम करके लोग बेवकूफ बन जाते हैं।”

परन्तु फिर भी जीवन को तहस-नहस कर देने वाले इस प्रेम रूपी पगला घोड़ा का इन्तजार जीवन-भर सभी को रहता है।

लड़की की लाश जलने के इन्तजार में वक्त काटने के लिए ताश खेलते चारों पुरुष पात्रों के इर्द-गिर्द मँडराती लड़की द्वारा ताश के पत्तों में साहब-बीवी के 'पेयर' को 'पगला घोड़ा' की कविता के 'जोड़ा' और 'बीवी' के संदर्भों से जोड़ कर नाटककार ने इसे बड़ी खूबसूरती और सार्थकता के साथ इस्तेमाल किया है—

“आम का पत्ता जोड़ा-जोड़ा

मारा चाबुक दौड़ा घोड़ा

छोड़ रास्ता खड़ी हो बीवी

आता है यह पगला घोड़ा

पगला घोड़ा...”

बादल सरकार ने बंगला के इस लोकप्रिय बाल-गीत में आए 'पगला घोड़ा' का केवल शीर्षक में ही नहीं बल्कि नाटक के कथ्य और मूल चरित्र को उद्घाटित करने में भी एक प्रतीक की तरह अत्यन्त रोचक और नाटकीय प्रयोग किया है। 'घोड़ा' कला (जैसे एम.एफ. हुसैन के सुविख्यात चित्र में), विज्ञान (जैसे 'हॉस-पावर' शब्द में) और साहित्य की बहुसंख्य रचनाओं तथा लोक-जीवन की बेशुमार अभिव्यक्तियों में 'शक्ति' या 'ऊर्जा' के समर्थ प्रतीक के रूप में प्राचीन काल से इस्तेमाल होता रहा है। जीवनी शक्ति या ऊर्जा के उन्मत्त और अनियंत्रित रूप 'प्रेम' को 'पगला घोड़ा' कहना वास्तव में इस परिचित शब्द का व्यंजनापूर्ण एवं सार्थक प्रयोग ही कहा जाएगा।

'पगला घोड़ा' मूल कथ्य (संवेदना) मानव जीवन में प्रेम की व्यापकता (कार्तिक के मूल प्लैटॉनिक प्रेम से लेकर सातू के मांसल दैहिक प्रेम तक), अर्थवत्ता और उसके अभाव की प्राणशून्य कर देने वाली भयावह रिक्तता को नाटकीय अभिव्यक्ति देना है। मनुष्य अपने आधे-अधूरे जीवन को पूरा करने, उसे सार्थक करने और आनन्द से भर देने के लिए प्रेम करता है। कम-से-कम उसकी अपेक्षा और आशा तो

<sup>1</sup> पगला घोड़ा : बादल सरकार (अनुवाद : प्रतिभा अग्रवाल), पृ. 76

यही होती है। वह कल्पना के आकाश में अबाध विचरण करने की आकांक्षा करता है। परन्तु जल्दी ही कटू यथार्थ की वास्तविकता, स्वार्थ-भावना में अन्तर्निहित विरोध ही कल्पना के पंख काट देते हैं। उन्माद और उत्साह ठंडा पड़ जाता है। सामाजिकता, नैतिकता, मर्यादा अथवा विवेक (समझदारी-दुनियादारी) के नाम पर व्यक्ति विवशता-कायरतावश या जानबूझकर व्यक्तिगत हित साधन के लिए पलायन कर जाता है। मोह-भंग की इस त्रासद प्रक्रिया में दूसरे व्यक्ति की आशा-आस्था ही नहीं टूटती बल्कि कभी-कभी तो जीने की इच्छा तक मर जाती है। बादल सरकार ने इस नाटक में चार पुरुष पात्रों और एक स्त्री के चार रूपों के माध्यम से जीवन के इस विडम्बनापूर्ण करुण सत्य को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से रूपायित करने का प्रयत्न किया है। नाटक में प्रस्तुत चारों लड़कियाँ पुरुषों की उपेक्षा और और कायरता के कारण आत्महत्या करती हैं। चारों पुरुष भी उन्हें खोकर स्वयं को अभावग्रस्त और दुःखी महसूस करते हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि प्रेम यदि एक भूल है, पागलपन है जो अन्ततः दुःख का कारण बनता है तो क्या इसलिए उसे करना ही नहीं चाहिए? जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' की कोमा भी कभी इसी शाश्वत् प्रश्न से टकराई थी और उसने अपने आप को उत्तर देते हुए कहा था, "हो पागलपन, भूल हो, दुःख मिले, प्रेम करने की एक ऋतु होती है। उसमें चुकना, सोच-समझकर चलना, दोनों बराबर हैं। सुना है दोनों ही संसार के चतुरों की दृष्टि में मूर्ख बनते हैं।" प्रेम के अभावजन्य एकाकीपन से त्रस्त 'पगला घोड़ा' की लड़की आत्महत्या कर लेती है और शेष तीन लड़कियाँ इस मृगतृष्णा जैसे प्रेम को पाकर भी अन्ततः इसी परिणति को प्राप्त होती हैं। तो फिर क्या स्वयं जीवन का अन्त ही इन तमाम दुःखों और कष्टों से मुक्ति का एकमात्र साधन नहीं है? शायद ऐसे ही बुनियादी प्रश्नों से जूझते हुए वरुण की स्वतन्त्रता के लिए अस्तित्ववादी चिन्तक आत्महत्या के प्रश्न से जा टकराए थे। परन्तु अपने अन्य नाटकों की तरह बादल सरकार यहाँ भी मृत्यु के मुकाबले जीवन का ही पक्ष लेते हैं। आत्महत्या का इरादा छोड़ विष से भरे गिलास को फैलाते हुए नाटक के अन्त में, और पहले भी कई बार आया, कार्तिक का यह संवाद कि "जिन्दा रहने पर ही सब कुछ सम्भव हो सकता है।" बादल सरकार के जीवन-दर्शन और नाटक के उद्देश्य को स्पष्टतः रेखांकित करता है।

बादल सरकार वास्तव में स्थितियों और संवादों के नाटककार हैं-मौलिक कथा सर्जक नहीं। सम्भवतः यही कारण है कि अत्यन्त रोचक, महत्त्वपूर्ण और सार्थक होने के बावजूद कथा-परिकल्पना की दृष्टि से 'पगला घोड़ा' बहुत स्वाभाविक और विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। अलग-अलग वर्ग, स्वभाव और परिस्थितियों के बावजूद नाटक में प्रस्तुत चारों प्रेमी-युगलों में से चारों लड़कियों का आत्महत्या करना कतई तर्क संगत और विश्वसनीय नहीं है। इन चारों का यहाँ एक साथ होना यदि संयोग भी है तो इसे 'दुर्लभ संयोग' ही कहा जाएगा। इस संदर्भ में ब्रैंडर मैथ्यूज ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अ स्टडी ऑफ ड्रामा' में 'संरचना-पद्धति' की चर्चा करते हुए कथा के स्वाभाविक या कृत्रिम आधार के सम्बन्ध में सार्से की एक दिलचस्प खोज का उल्लेख करते हुए कहा है कि "दर्शकवृन्द कथा के उद्घाटन में तो नितान्त असम्भव प्रतीत होने वाली स्थिति को भी स्वीकार कर लेंगे, वे तो ऐसे जुड़वाँ भाइयों का अस्तित्व मान लेंगे जिनकी पत्नियाँ भी उन्हें पहचान नहीं पातीं (जैसे 'कामेडी ऑफ एर्स' में), अथवा लेखक के इस कथन को भी अमान्य नहीं करेंगे कि एक घुमक्कड़ अंग्रेज की शक्ल-सूरत पूर्ण रूप से सम्राट से मिलती है (जैसे-'प्रिंजर ऑफ जेन्डा' में)। वे शांति से बैठकर प्रतीक्षा करेंगे कि आगे क्या होता है, और लेखक को



वह जितनी छूट चाहे, दे देंगे; परन्तु वे यह देखेंगे कि नाटक में वह उस छूट का उपयोग किस प्रकार करता है। यदि इस प्रकार की जबरदस्ती लाई हुई स्थिति पर आधारित नाटक दर्शकों को रोचक लगता है, और कथा के आगे बढ़ने पर उनको उसमें लीन रखता है तो इसके कृत्रिम आधार को भूल जाएँ और उन्हें शिकायत करने का अवकाश नहीं रहेगा।”<sup>1</sup> वास्तव में यही कारण कि ‘पगला घोड़ा’ का दर्शक-पाठक नाटक के इस ‘कृत्रिम आधार’ की ओर ध्यान नहीं देता कि “तुम सबका किस्सा एक जैसा ही है—सबका एक जैसा किस्सा मिलकर एकरूप हो जाएगा।”<sup>2</sup> व्यवहारतः भला यह कैसे संभव है कि रचना के अलग-अलग चारों पात्रों की आत्महत्या वाली आरोपित परिणति और नाटककार के इस सामान्यीकृत निष्कर्ष को भी तार्किक दृष्टि से स्वीकार कर पाना आसान नहीं है कि “प्रेम की आग में जले बिना लड़कियों के लिए जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।”<sup>3</sup> यह सच है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक भावुक होती है और असफल-प्रेम के कारण आत्महत्या करने वालों में भी लड़कियों का अनुपात प्रायः अधिक होता है। परन्तु नाटककार द्वारा इस अनुपात को शून्य के मुकाबले शत-प्रतिशत सिद्ध करना किसी भी दृष्टि से तथ्याश्रित नहीं कहा जा सकता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेम की असफलता व्यक्ति (पुरुष और स्त्री दोनों) को कुठित करती है और इस कुंठा की अनिवार्य परिणति स्त्रियों में आत्महत्या ही हो, यह सत्य नहीं है। कम-से-कम इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खड़े सभ्य मानव-समाज में जीवन के लक्ष्य, अर्थ और उद्देश्य को लेकर स्त्री-पुरुष में इतना भेद मानना व्यावहारिक और न्यायोचित प्रतीत नहीं होता। परन्तु इस एक बात के अलावा चरित्रांकन और रंग-शिल्प के स्तर पर नाटककार ने मनोविज्ञान/मनोविश्लेषण का इतना सूक्ष्म, गहरा और रचनात्मक प्रयोग रचना में किया है कि आधार की इस जबरदस्ती की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता।

नाटककार स्वयं भी यह अच्छी तरह जानता और मानता है कि नाटक में प्रस्तुत चारों कहानियों की मूलभूत समानता रोचकता और कुतूहल की दृष्टि से नाट्य-कथा की इतनी बड़ी सीमा है कि उनकी कहानी, “एक साथ सब सुनने से शायद उतनी अच्छी न लगे।”<sup>4</sup> इसीलिए उसने कथा-वस्तु और संरचना के धरातल पर पूर्वदीप्ति (फ्लैशबैक) पद्धति का सहारा लेकर कहानियों को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँट कर इस कलात्मक एवं प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया कि दर्शक-पाठक की रुचि उसमें आद्यन्त बनी रहती है और वह मोहन राकेश के बहुचर्चित नाटक ‘आधे-अधूरे’ ही की तरह यहाँ भी स्वाभाविकता एवं तार्किकता की ओर अधिक ध्यान नहीं देता। यही नहीं, लगभग एक ही समय में लिखे गए बादल सरकार और मोहन राकेश पुरुष के स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के इन दोनों नाटकों में और भी कई समानताएँ हैं। बादल सरकार वर्ग, रूप, स्वभाव और परिस्थितियों की बाहरी प्रकट भिन्नता के बावजूद स्त्री की भीतरी शाश्वत एकता को रेखांकित करते हैं तो मोहन राकेश पुरुष के अलग-अलग मुखौटों के अन्दर के एक ही चेहरे पर बल देते हैं। बादल बाबू ने एक ही अभिनेत्री से चारों नारी भूमिकाएँ करवाने की योजना की है तो राकेश ने यही चुनौती अपने अभिनेता के सामने रखी है। वस्तु-संरचना के स्तर पर दोनों नाटकों की एक बड़ी सीमा यह

<sup>1</sup> नाटक साहित्य का अध्ययन : ब्रेंडर मैथ्यूज़ (अनुवाद : इन्दुजा अवस्थी), पृ. 115

<sup>2</sup> पगला घोड़ा : बादल सरकार (अनुवाद : प्रतिभा अग्रवाल), पृ. 19

<sup>3</sup> वही : पृ. 31

<sup>4</sup> पगला घोड़ा : बादल सरकार (अनुवाद : प्रतिभा अग्रवाल), पृ. 56

है कि एक-आध कथा प्रसंग को घटाने या बढ़ाने से रचना के मूल सम्प्रेक्ष्य/निष्कर्ष में कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ता। परन्तु कथ्य और शिल्प (एक ही कलाकार द्वारा विभिन्न चरित्र अभिनीत करने की रंग-युक्ति) की यह अन्विति इन दोनों नाटकों की प्रबल शक्ति और उपलब्धि भी है।

### नाट्य-शिल्प

‘पगला घोड़ा’ की **कथावस्तु** श्मशान में एक युवा लड़की का दाह-संस्कार करने आए चार पुरुषों की आपसी बातचीत पर आधारित है। चिता पर जलती लकड़ी को, नारी के चिरन्तन रूप में, एक प्रत्यक्ष पात्र की तरह मंच पर साकार प्रस्तुत किया है—यद्यपि अन्य चारों पात्रों को उसकी अनुभूति नहीं होती। अपने जीवन में एक पागल की विवाहिता और एक नपुंसक एय्याश (मलिक बाबू) के मन-बहलाव का साधन रह चुकी इस लड़की ने कभी किसी का प्रेम न पा सकने की पीड़ा को सहने में असमर्थ होकर, और इसी कारण जीवन को अर्थहीन मानकर, आत्महत्या की है। यह लड़की शराब से शिथिल-चेतन हुए चारों आदमियों के आसपास मँडराती है और उन्हें छोड़कर अपने-अपने अतीत में झाँकने को विवश करती है। प्रत्यक्षतः इस लड़की की आत्महत्या के कारणों की छान-बीन करते हुए वह अपनी चेतना में जीवन के उन प्रेम-प्रसंगों को जीने लगते हैं जिनमें उनकी कायरता, उपेक्षा और अहमन्यता के कारण उनकी प्रेमिकाओं को विवश होकर आत्महत्या करनी पड़ी थी। नाटककार ने शशि-मालती, हिमाद्रि-मिलि और सातू-लक्ष्मी के बीते हुए प्रेम-प्रसंगों को मंच पर वर्तमान में साकार कराने के लिए लड़की से उनकी प्रेमिकाओं की भूमिका भी कराई है। एक ही लड़के को बार-बार कभी उच्च वर्ग की आधुनिका मिली, कभी मध्यमवर्ग की आदर्शवादी पढ़ी-लिखी मालती और कभी-निम्नवर्ग की अनपढ़ गंवार किन्तु आत्मसम्मानि और अनन्य-प्रेमिका लक्ष्मी बनकर आना और पुरुष के अहंकार अथवा कायरतापूर्ण स्वार्थ से टकरा कर आत्महत्या के लिए विवश होना—आदिकाल से लेकर आज तक अलग-अलग रूपों में पुरुष द्वारा स्त्री के शोषण की बेबस स्थिति का जीवन्त रेखांकन कर देता है। लड़की का पागल लड़के से विवाह और फिर कुलक्षणी कहकर उसका परित्याग तथा अपाहिज-बेबस बूढ़े पिता की मदद के बहाने लड़की का मलिक बाबू द्वारा इस्तेमाल भी नारी-शोषण का ही एक अन्य पहलू है। नाटककार के शब्दों में, “लड़की का एकमात्र दोष यह था कि वह लड़की थी।”<sup>1</sup> परन्तु लड़की मानती है कि प्रेम में पीड़ा पाकर मर जाना भी जीवन को सार्थकता देता है। किसी के मन में खालीपन को भर देना ही महत्त्वपूर्ण है। प्रेम में जुड़कर जलने में भी कोई कष्ट नहीं है। मालती, मिली और लक्ष्मी इसीलिए भाग्यवान थीं कि वे प्रेम पाकर और प्रेम देकर मरीं। इसीलिए यह लड़की अन्त तक पगला घोड़ा को कोसती है कि वह सब कुछ तहस-नहस करने उसके जीवन में भी क्यों नहीं आया। जब कार्तिक की मोची वाली कहानी के माध्यम से इस सत्य का उद्घाटन होता है कि वह सात साल तक इसी लड़की से मूक-प्रेम करता रहा है तो वह तड़प कर चीत्कार कर उठती है कि “मुझे चिता से उतार लाओ। अभी भी जलकर राख नहीं हुई हूँ—अभी भी जल रही हूँ—उतार लाओ—पगला घोड़ा। मुझे लौटा लाओ, मुझे उतार लाओ, पगला घोड़ा।”<sup>2</sup> प्रेम की झलक मात्र ही नहीं उसमें जीवन के प्रति अदम्य लालसा पैदा कर देती है। परन्तु जीवन को तो वह स्वयं ही निराशा और जल्दबाजी में समाप्त कर चुकी है। इसी बिन्दु पर नाटककार अपने जीवन-दर्शन और उद्देश्य को स्पष्टतः रेखांकित

<sup>1</sup> पगला घोड़ा : बादल सरकार (अनुवाद : प्रतिभा अग्रवाल), पृ. 59

<sup>2</sup> वही : पृ. 102

करते हुए कहता है कि “जिन्दा रहने पर ही सब कुछ सम्भव हो सकता है।”<sup>1</sup> और कार्तिक कम्पाउंडर आत्महत्या का इरादा छोड़ जहर भरे गिलास को धीरे-धीरे ज़मीन पर फैलाकर खाली कर देता है। इस प्रकार, ‘पगला घोड़ा’ अन्ततः आत्महत्या और मृत्यु के बहाने से स्वयं जीवन ही की नाट्य-कथा बन जाता है। यद्यपि अन्त से पहले भी कई जगह रचनाकार ने जीवन के प्रति अपनी इस आस्था को दोहराते हुए कहा है कि—

“जिन्दगी से मौत कभी अच्छी नहीं होता।” (पृ. 61)

“जिन्दा रहने से अच्छा और कुछ भी नहीं है।” (पृ. 61)

“मौत को देखने पर ही शायद जिन्दगी को देखा जा सकता है।” (पृ. 62)

परन्तु ‘बाकी इतिहास’ की तरह यहाँ भी नाटक के अन्त में प्रमुख चरित्र द्वारा अचानक जीवन का यह आग्रह काफी कुछ आरोपित-सा लगता है।

श्मशान, रात का समय, बगल में चिता पर धू-धू जलता एक शव और कुत्ते के रोने की आवाज के परिवेश और ताश, शराब तथा प्रेम-कहानियों से भरे कथ्य के विरोध/वैषम्य से नाटककार ने अद्भुत नाटकीयता पैदा की है। कहानियों को तोड़ने और जोड़ने के लिए मनोविज्ञान के साहचर्य (एसोसिएशन) नियम का अत्यन्त कौशलपूर्ण प्रयोग यहाँ हुआ है। सातू के संवाद में आए ‘खाते-पीते’ शब्द में से ‘पीते’ को पकड़कर कार्तिक पीने के लिए बोतल निकालने की बात कहता है। कुत्ते के रोने की आवाज सातू को लक्ष्मी के कुत्ते भुलुआ की स्मृति से बार-बार अतीत में ले जाती है। शराब पीते ही शशि का सिर भारी होने लगता है और मन में उमड़ता-घुमड़ता मालती-प्रसंग मुखर हो उठता है। कार्तिक के सामान्य से प्रश्न “क्या वैसी कोई चीज आपको नहीं मिली?” तथा सातू के एकदम साधारण उत्तर, “कहाँ मिली?” में अनायास आ गए ‘मिली’ शब्द से हिमाद्री को अपनी प्रेमिका ‘मिलि’ की याद आ जाना एकदम स्वाभाविक ही है। लड़की के “आसमान के उस रंग” को ताश के रंग से भी ऐसे ही जोड़ा गया है।

प्रथम अंक के आरम्भिक हिस्से में ‘उद्घाटन’ के अन्तर्गत नाटककार ने बड़ी सूझ-बूझ और चतुराई से अपने सभी पुरुष चरित्रों की प्रमुख विशेषताओं का संकेत दे दिया है। सारी नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती लड़की को इसीलिए अनाम ही रहने दिया है और उसकी जीवन-कथा को सारे नाटक को बाँधने वाले केन्द्रीय-सूत्र की तरह इस्तेमाल किया गया है। नर-नारी का प्रेम मानव जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण किन्तु करुण-कोमल और रहस्यमयी व्यक्तिगत भावना है। भारतीय समाज की मर्यादा इस रहस्य को गुप्त रखने पर विवश करती है। यह गोपनीयता और विवशता व्यक्ति को अपनी तीव्र एवं उद्दाम प्रेम-भावनाओं के ‘दमन’ (मनोवैज्ञानिक अर्थ में) के लिए बाध्य करती है। चेतन और अवचेतन संघर्ष की यह बाध्यता प्रेमी को कुठित बनाती है। जीवित और स्वस्थ बने रहने के लिए इन दमित भावनाओं की अभिव्यक्ति अनिवार्य है। यह अभिव्यक्ति स्वप्नों के माध्यम से होती है या फिर सम्मोहन जैसी स्थिति में चेतन के सँसर के शिथिल पड़ जाने पर। साहचर्य और निरापद अन्तरंग-आत्मीयता का सहज वातावरण इसमें सहायक होते हैं। ‘पगला घोड़ा’ में बादल सरकार ने ताश, शराब और विशिष्ट वातावरण के माध्यम से इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को बड़ी कुशलता से सम्भव बनाया है। शराब का प्रभाव इस नाटक के दमित-कुठित चरित्रों के

<sup>1</sup> वही : पृ. 102

मन से चेतन का अंकुश ढीला कर उन्हें खुलने का अवसर देता है और वह अपने सहज-मौलिक रूप में दर्शकों-पाठकों के समक्ष बेपर्दा होते चले जाते हैं।

जीत के सुख के लोभ से परिचालित पोस्ट मास्टर शशि किसी 'आदर्श-वाद' के कारण नहीं बल्कि अपने अफसर मलिक बाबू को खुश रखने के व्यावहारिक स्वार्थ से प्रेरित होकर लड़की के दाह-संस्कार में शामिल हुआ है। आठ साल पहले इसने पटना की एक लड़की से शादी की थी, जो दो साल बाद ही इसे छोड़कर भाग गई। परन्तु उसका मन वास्तव में दस साल सात महीने पहले के मालती से हुए अपने असफल प्रेम-सम्बन्ध के पश्चात्ताप से भरा है। अपनी प्रेमिका मालती का विवाह इसने तथाकथित 'चरित्र', 'आदर्श' और 'त्याग' के नाम पर अपने मित्र एवं फुफेरे भाई प्रदीप से करा दिया था। अपने प्रेमी की कायरतापूर्ण उपेक्षा और पति की क्रूरता से दुःखी होकर मालती ने साल भर के अन्दर ही मिट्टी का तेल डालकर खुद को जलाकर मार डाला था। परिणामस्वरूप आदर्श, चरित्र और जीत जैसे शब्दों से शशि का पूरी तरह मोहभंग हो जाता है और अब वह प्रेम को श्मशान और श्मशान को ही प्रेम मानने लगा है।

पन्द्रह साल की उम्र में घर से भागकर घुमक्कड़ी जीवन बिताने वाले इक्यावन वर्षीय ठेकेदार सातू के अनुसार, "दुनिया में ऐसा कोई भी काम नहीं जो मैंने न किया हो ऐसा कुछ भी नहीं जो मैंने न देखा हो।" कोई भी निषेध न मानने वाले, रोग रहित मजबूत शरीर के मालिक सातू की ब्याह किए बिना ही सब कुछ पा लेने वाली व्यस्त किंतु रंगीन जिन्दगी में भी लछमी/लक्ष्मी की मौत काँटे की तरह लगातार चुभ रही है। परन्तु गुंडों के छूरे-चाकू की परवाह न कर लक्ष्मी को उनसे बचाने वाला सातू समाज के भय से नहीं लड़ सकता। लछमी इसे पति से भी ज्यादा मानती थी और सातू को भी लगता था कि "तुझे छोड़कर मेरा गुजारा कैसे होगा?" परन्तु लछमी के लाख मना करने के बावजूद लोगों के डर से सातू उसे निर्ममतापूर्वक अपने एक घर-परिवार वाले मित्र बड़े ठेकेदार माधव बाबू के घर नौकरी पर रखवा देता है, जहाँ वह जबरदस्ती उनके एक अन्य मित्र की भेंट चढ़ा दी जाती है। प्रेम में तिरस्कृत लछमी का अन्त आसनसोल जिले के एक शहर के बदनाम मुहल्ले के एक कोठे पर टी.बी. और एक अन्य 'खास बीमारी' से लड़ते हुए होता है। संयोग से, उसी कोठे के दूसरे कमरे में अपनी वासना शान्त करता सातू लछमी के दाह-संस्कार में शामिल होता है और लोगों के आग्रह पर उसे आग भी देता है। लछमी का प्रिय कुत्ता भुलुवा (जिसे सातू बेहद नफरत करता था) अन्त तक न केवल उसके साथ ही रहता है बल्कि दाह-संस्कार के साथ ही अपने प्राण भी त्याग देता है। एक कुत्ते के मुकाबले हीन सिद्ध होने की कुंठा और लछमी की मृत्यु के अनुताप से वह आज भी स्वयं को मुक्त नहीं कर पाया है।

तीसेक साल की उम्र वाला स्कूल टीचर हिमाद्रि लोगों की नजर में आदर्शवादी है। परन्तु वह स्वयं मानता है कि "स्कूल टीचर का कोई सिद्धान्त न भी हो तो भी उसे खोल तो ओढ़ना ही पड़ता है।" परन्तु शराब से घोर घृणा करने वाला हिमाद्रि मिलि से अपने प्रथम प्रेम की याद और उसकी आत्महत्या के दायित्व-बोध की विह्वल पीड़ा से आक्रान्त होकर यहाँ श्मशान में नीट शराब पी जाता है। अपने शराब पीने से उसे मिलि के शराब पीकर तेज कार चलाने और पेड़ से टकराकर मर जाने की त्रासद घटना का स्मरण हो आता है। निम्न मध्यवर्गीय हिमाद्रि मिस मिलि राय के भाई को ट्यूशन पढ़ाता था। हिमाद्रि और मिलि में प्रेम हुआ और स्वयं को अपने प्रेमी की इच्छाओं के अनुरूप ढालने की प्रक्रिया में मिलि ने टेनिस, स्वीमिंग, ड्राइविंग, पार्टी, पिकनिक वगैरह सब छोड़ दिया। परन्तु दो सालों तक लगातार बहुत कोशिश करने

के बावजूद दोनों के बीच का वर्ग-भेद एवं सामाजिक-आर्थिक अन्तर पूरी तरह मिट नहीं सका। मिलि द्वारा अपनी घनिष्ठ-मित्र डॉली की बर्थ-डे पार्टी में एकाध ड्रिंक लेने की बात पर हठी, दुराग्रही और किसी हद तक अहंकारी हिमाद्रि उसे अपमानित कर सदैव के लिए सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है। उसके प्रेम-पाश में बुरी तरह जकड़ी बेबस मिलि उसे दीन-हीन बनकर समझाने और मनाने के तमाम असफल प्रयासों के बाद ढेर सारी शराब पीकर तेज कार चलाते हुए एक्सीडेंट मार कर आत्महत्या कर लेती है।

कमजोर आँखों और जोड़ों के दर्द का मारा उनचास वर्षीय 'ब्राह्मण का बेटा' कार्तिक साठ से अधिक उम्र का (बूढ़ा) दिखाई देता है। पिछले छिब्बिस साल से कम्पाउण्डरी कर रहा है। बाहर से काफी बातूनी और मजाकिया-सा लगने के बावजूद भीतर से वह एकदम बेचारा और अकेला है। शराब को 'श्मशान काली का दिव्य प्रसाद' मानने वाला कार्तिक बताता है कि उसे तो सिर्फ 'विलायती का नशा' ही इस मुर्दनी में खींच लाया है। वह शराब पीने का अभ्यस्त है, इसलिए सबसे ज्यादा पीने के बाद भी वह नशे में नहीं आता और अपनी 'मूक-प्रेम-कहानी' को सचेत रहकर 'मोची की कहानी' के छद्म रूप में सुनाता है। वह सात साल तक इस नाम लड़की से मन-ही-मन अपार प्रेम करता रहा किन्तु उम्र के अन्तर, सामाजिक भय और अपनी साहस-हीनता के कारण कभी व्यक्त नहीं कर सका। आत्महत्या के लिए लड़की के ज़हर माँगने आने पर वह उसे कई तरह से जीवन का मूल्य समझाता है किन्तु उसके न मानने पर सात दिन बाद आने को कहता है। इसी बीच लड़की आत्महत्या कर लेती है। कार्तिक जिसे जीवन में कुछ नहीं मिला और जिसने मिलने की आशा में ही सारा जीवन काट दिया है—लड़की की मृत्यु से भीतर तक आन्दोलित-उद्वेलित हो उठता है। पूरी तरह आशारहित होकर नाटक के अन्त में वह ज़हर खाकर मरने का इरादा करता है परन्तु "जिन्दा रहने पर सब कुछ संभव हो सकता है" का जीवन-दर्शन उसे बचा लेता है।

मालती, मिलि और लछमी की विविध भूमिकाएँ करने वाली—सम्पूर्ण नारी जाति की प्रतीक—युवा अनाम लड़की एक ऐसे गरीब बाप की बेटा है जिसने पचास की उम्र में एक सोलह साल की लड़की से शादी की थी। लकवा के शिकार शय्याग्रस्त बेबस बाप के अलावा इस लड़की का संसार में और कोई नहीं था। पच्छिम की खिड़की से दिखने वाले सतरंगे आकाश को देखती और प्रेम मिलने की उम्मीद में मस्त रहती इस बेसहारा-निर्धन लड़की का विवाह एक पागल लड़के से कर दिया जाता है जो विवाह-संस्कार के बाद ही छुपकर कहीं भाग जाता है। ससुराल के अपमान, तिरस्कार और झूठे लौंछनों से दुःखी होकर वह घर वापस लौटती है तो उसके असहाय बूढ़े-बीमार बाप पर एहसान करने के एवज में नपुंसक मलिक बाबू उसे हल्के-फुल्के मन-बहलाव के साधन के रूप में इस्तेमाल करता है। प्रेम की उत्कट लालसा से भरी किन्तु उसे कभी भी पा जाने की सम्भावना की परछाईं से भी दूर यह लड़की जीवन को पूर्णतः निरर्थक समझ, कार्तिक कम्पाउंडर के काफी समझाने के बावजूद अन्ततः फाँसी लगाकर आत्महत्या कर लेती है। और चिता पूरी तरह जल चुकने के अंतिम क्षणों में कार्तिक के मूक-प्रेम का संकेत पाकर जीवन की अदम्य आकांक्षा से छटपटाते हुए खत्म हो जाती है।

बादल सरकार ने स्पष्टतः **चरित्रांकन** में मनोविज्ञान/मनोविश्लेषण का गहरा प्रयोग किया है। 'गलतियों का मनोविज्ञान' भी इसका एक प्रमुख अंग है। सिग्मंड फ्रायड के अनुसार, "जिस प्रवृत्ति को बाहर आने से रोका गया है, वह उसकी इच्छा के विरुद्ध बल लगाती है और मुँह से निकलती है—या तो वह वक्ता द्वारा प्रकट किए जा रहे आशय की अभिव्यक्ति को बदलकर या उसमें मिलकर या स्वयं उसके स्थान पर

आकर प्रकट होती है।” अवचेन की दमित भावनाओं के जोर और चेतन पर शराब के प्रभाव के कारण ‘पगला घोड़ा’ के चरित्र असली बात को छिपाने और बताने के द्वन्द्व में कई जगह बोलने की गलतियाँ करते हैं जिनसे उनके व्यक्तित्व को समझने में महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। उदाहरण के तौर पर कार्तिक का यह संवाद दृष्टव्य है—“जितने लोग आते थे उनमें इस लड़की को ही—माने इस लड़की का ही वह इन्तजार किया करता था।” (पृ. 68) यहाँ वास्तविक शब्द ‘प्रेम’ को मुँह से निकलने से पहले साहसहीन कम्पाउंडर ने सुधार कर निरापद शब्द ‘इन्तजार’ में बदल दिया है। इसी प्रकार शशि के इस संवाद में कि “लड़की यह अच्छी तरह समझ गई है कि प्रदी—माने मेरे साथ ब्याह मेरे यहाँ—आता था।” (पृ. 66) में शशि द्वारा प्रदीप की जगह स्वयं को रखकर सवाल पूछने और सातू द्वारा अपने घर में लछमी की उपस्थिति (शारीरिक-सम्बन्ध) को छुपाने का रहस्य खोलने के रेखांकित शब्द बड़े भोलेपन से खोल देते हैं।

संवाद इस नाटक की प्रभावशीलता का एक प्रमुख तत्व है। चरित्रों के शारीरिक-मानसिक और परिस्थितिगत भेद को रचनाकार ने व्यवहार और कथोपकथन की विशिष्ट-शैली द्वारा बड़ी विश्वसनीयता से स्थापित किया है। चारों पुरुष पात्र समय-असमय हँसते हैं लेकिन नाटककार ने चारों की हँसी के फर्क का स्पष्ट निर्देश भी गाहे-ब-गाहे आलेख में किया है। कार्तिक का तकियाकलाम की तरह बार-बार “तारा तारा..काली ब्रह्ममयी माँ” की गुहार लगाना उसे फौरन बाकी सबसे एक अलग पहचान दे देता है। यही बात निम्नवर्ग की अनपढ़-गाँवार लछमी के संवादों के ग्राम्य-स्पर्श के बारे में भी कही जा सकती है। मार्मिकता, विदग्धता, हास्य-व्यंग्य, विडम्बना और प्रभावशीलता इन संवादों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। भाषा में सहज प्रवाहमयता है। बोलचाल के शब्दों और मुहावरों का प्रयोग भाषा को नई चमक प्रदान करता है। यहाँ वह चरित्र की आन्तरिकता से जुड़कर एक अलग ही असर पैदा करता है। जैसे-पैसे वाले, व्यावहारिक और खेले खाए दुनियादार आदमी सातू के मुँह से ‘बावन तोले पाव रती’, ‘चक्कार में पड़ना’, ‘सोलह आने खरी’, ‘न घर का न घाट का’ तथा ‘एक ही थैली के चट्टे-बट्टे’ जैसे मुहावरों का प्रयोग केवल भाषा और संवाद ही नहीं उसके चरित्रांकन का भी एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसी प्रकार ‘चूल्हे में जाना’ तथा ‘ज़बानी जमा-खर्च’ पोस्ट मास्टर शशि के अपने जीवन से जुड़ी अभिव्यक्तियाँ हैं तो ‘मिट्टी का माधो’ और ‘गाँठ का पैसा’ सीधे तथा निर्धन कार्तिक की जिन्दगी का सच है। नाटक के विशिष्ट बंगाली चरित्रों और वहीं के ख़ास परिवेश की प्रामाणिकता को देखते हुए, “नाटक के वातावरण एवं बातचीत को ज़बरदस्ती हिन्दी-क्षेत्र के अनुरूप बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। कुछेक अभिव्यक्तियों को (जैसे तारा माँ, श्मशान काली का प्रसाद, श्मशान गोष्ठी) हिन्दी क्षेत्र में प्रचलित न होने पर भी ग्रहण किया गया है क्योंकि उनका रूपान्तर सम्भव नहीं और उनके बदले में सर्वथा भिन्न अभिव्यक्ति रखने से अनेक उलझनें पैदा हो सकती थीं।—ऐसे स्थलों पर बंगला का असर यदि बना रह गया है तो अज्ञानतावश नहीं वरन् सर्वथा उपर्युक्त होने के कारण और इस कारण भी कि उनको बदलना संभव नहीं।” इस दृष्टि से ‘पगला घोड़ा’ का यह हिन्दी अनुवाद निश्चय ही एक प्रभावशाली एवं रचनात्मक अनुवाद है जिसे बंगला और हिन्दी की अच्छी जानकार तथा रंगमंच की अनुभवी एवं श्रेष्ठ अभिनेत्री प्रतिभा अग्रवाल ही कर सकती थीं। नाटक की मूल संवेदना अनुवाद में पूरी शक्ति और गहराई के साथ अभिव्यक्त हुई है।

<sup>1</sup> फ़ायड मनोविश्लेषण : अनुवाद—देवेन्द्र कुमार वेदालंकार, पृ. 57

<sup>2</sup> पगला घोड़ा : बादल सरकार (अनुवादक की दृष्टि में)

रंग-शिल्प की दृष्टि से 'पगला घोड़ा' एक अनूठी रचना है। मृत लड़की का जलती चिता से उठकर आना और जीवित व्यक्तियों से छेड़छाड़ करके उन्हें मन के अवचेतन में दबी-घुटी स्मृतियों को याद करने के लिए प्रेरित करना, अतीत के क्षणों को वर्तमान में जीते इन पात्रों के लिए उनकी प्रेमिकाएँ बनना, अतीत और वर्तमान की काल-विभाजक सीमाओं को मिटा देना—एक ऐसी अद्भुत रंग-युक्ति है जो नाटक को यथार्थ से हटा कर अयथार्थ या फैंटेसी की दुनिया में ले जाती है। एक ही कलाकार से चारों चरित्र कराने की यह योजना केवल अभिनेत्री के लिए एक चुनौती ही प्रस्तुत नहीं करती बल्कि नारी की सामान्यीकृत चिरंतन त्रासद नियति को रेखांकित करने में भी निर्णायक भूमिका निभाती है। कथ्य और शिल्प की यह अन्विति इस नाटक के शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता है। डॉ. प्रतिभा अग्रवाल के शब्दों में, “वास्तविक और अवास्तविक, वर्तमान और अतीत, निस्संगता और सहज प्रेम ऐसा एक-दूसरे में घुल-मिल गए हैं कि इनमें परस्पर विरोध नहीं प्रतीत होता, ये विभिन्न पात्रों और घटनाओं के दो पहलू प्रतीत होते हैं। श्मशान और मृत्यु की वीभत्सता को प्रेम की मधुरता में रूपान्तरित करने का काम बादल बाबू जैसे समर्थ लेखक द्वारा ही सम्भव है।”<sup>1</sup>

नाटक के प्रभाव को बनाने और गहराने के लिए रचनाकार ने पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैक) और स्थिरीकरण (फ्रीजिंग) जैसी तकनीकों के साथ-साथ प्रकाश और अन्धकार, कुत्ते की रोने की आवाज, सातू के अट्टहास, लड़की की हँसी के ध्वनि-प्रभाव और नाटकीय मौन का अत्यन्त सार्थक एवं कल्पनाशील उपयोग किया है। शाब्दिक संवाद को दृश्यबिम्ब में रूपान्तरित करने की कला में भी बादल बाबू को महारत हासिल है। उदाहरण के तौर पर, ताश खेलते हुए बाज़ी जीत जाने के बाद सातू का कथन है, “चाहिए, काली झंडी हो गई।” और ठीक इसी के साथ लेखक का निर्देश है, “दर्शकों की ओर (लड़की की) पीठ है जिस पर खुले बाल लहरा रहे हैं।” और इसके साथ ही सातू अपनी बात पूरी करते हुए कहता है, “काली झंडी।”<sup>2</sup> स्पष्ट है कि युवा लड़की की पीठ पर लहराते काले बाल यहाँ दर्शकों के लिए काली झंडी का दृश्य-रूप ही बन जाते हैं। इसी प्रसंग में लड़की का नाटक से अलग हटकर सीधे दर्शकों को सम्बोधित करते हुए यह कहना कि “ये दुःख भुलाना चाह रहे हैं? शराब के नशे में?”<sup>3</sup> ब्रेख्त के ‘अलगाव’ की याद दिला देता है। ताश की गड्डी के फैंटने को कई जगह चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व और भावनाओं की उठा-पटक से भी बड़ी चतुराई से जोड़ा गया है।

कस्बे के बाहर श्मशान के एक ही दृश्य-बंध पर अभिनीत होने वाला यह दो अंकों का नाटक—यथार्थवादी, प्रतीकात्मक या सांकेतिक—किसी भी प्रकार की दृश्य-सज्जा के साथ किया जा सकता है। श्यामनंद जालान (अनामिका, कलकत्ता) की प्रस्तुति में दृश्य-बंध परिकल्प खालिद चौधरी ने नाटककार के निर्देशानुसार मंच-सज्जा में एक जर्जर से कमरे के ढाँचे, सूने पेड़ के तने, लकड़ियों के गट्ठर, घड़े और स्टूल वगैरह का इस्तेमाल किया था। इसके विपरीत, टी.पी. जैन (अभियान, दिल्ली) की प्रस्तुति में सूरज घई ने मंच पर एक अजीबोगरीब उलझावपूर्ण-सी प्रतीकात्मक संरचना बनाई थी, जिसके पीछे से आती-जाती लड़की पात्रों की चेतना के विविध स्तरों से आती-जाती प्रतीत होती थी।

<sup>1</sup> पगला घोड़ा : बादल सरकार (अनुवाद : प्रतिभा अग्रवाल), पृ. 6

<sup>2</sup> वही : पृ. 24

<sup>3</sup> वही : पृ. 24

अभिमंचन की दृष्टि से प्रयोगधर्मी, 'पगला घोड़ा' आसान नाटक नहीं है। श्मशान के भयावह आतंक और कोमल-करुण प्रेम-प्रसंगों की रोमानियत में निर्देशकीय संतुलन के साथ-साथ यह नाटक चार चरित्र निभाने वाली अभिनेत्री और पल-पल बदलते प्रकाश-अंधकार, अतीत-वर्तमान तथा वास्तव-अवास्तव के जटिल खेल को पूरी सावधानी, सतर्कता एवं सफलता से प्रस्तुत करने वाले प्रशिक्षित-प्रवीण तकनीशियन के सामने भी एक कठिन चुनौती उपस्थित करता है। निर्देशक, अभिनेता या पार्श्वकर्मी की जरा-सी असावधानी भी नाटक के सघन एवं तनावपूर्ण प्रभाव को खंडित कर प्रदर्शन को हास्यास्पद बना सकती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह आधुनिक हिन्दी रंगमंच के लिए गौरव की बात है कि इस बंगला नाटक को सर्वप्रथम समृद्ध बांग्ला-रंगमंच के बजाय प्रयोगधर्मी हिन्दी रंगमंच पर ही अभिमंचित किया गया। सितम्बर, 1969 में दिल्ली की महत्त्वपूर्ण नाट्य-संस्था 'अभियान' द्वारा टी.पी. जैन निर्देशित इसके सफल प्रस्तुतीकरण के बाद ही इसे 'थियेटर यूनिट', बम्बई द्वारा सत्यदेव दुबे तथा 'अनामिका' कलकत्ता द्वारा श्यामानंद जालान के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया। बंगला में इसका प्रथम मंचन 1971 में कलकत्ता की सुविख्यात नाट्य-संस्था 'बहुरूपी' द्वारा आधुनिक भारतीय रंगकर्म के शिखर-पुरुष शम्भु मित्र के निर्देशन में हुआ। कालान्तर में देश भर के अनेक प्रतिभावान नाट्य-निर्देशकों ने अपने-अपने ढंग से इसके प्रस्तुतीकरण किए जिनमें से सर्वाधिक उल्लेखनीय अद्यतन प्रस्तुतीकरण राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, रंगमंडल (दिल्ली) का है जिसे 9 जून 1988 को अतिथि-निर्देशक सत्यदेव दुबे के निर्देशन में खेला गया।

'अभियान' के प्रस्तुतीकरण में टी.पी. जैन ने अपराध-बोधजन्य मानसिक उद्वेलन और भयावह विपरीत परिस्थितियों के बावजूद जीवित बने रहने की भावना पर बल दिया तो श्यामानंद जालान ने 'अनामिका' की प्रस्तुति में नाटक के प्रेम-पक्ष और पश्चात्ताप को उभारा। श्यामानंद जालान के अनुसार, "नाटक वास्तव में प्रेम-कहानी है—एक नहीं चार। और मैंने अपने प्रस्तुतीकरण में नाटक के उसी पक्ष पर जोर दिया। श्मशान के वीभत्स संकेतों को बिल्कुल दबाकर मैंने रूमानियत को ही उभारा, प्यार की रूमानियत, विरह की असह्य यंत्रणा की रूमानियत। दृश्य-बंध, आलोक, अभिनय सभी में नाटक की मूलभूत रूमानियत को व्यक्त करने का हमारा प्रयास था।"<sup>1</sup>

'पगला घोड़ा' की बंगला प्रस्तुति में शम्भु मित्र ने चारों लड़कियों की भूमिका चार अलग-अलग अभिनेत्रियों से कराई और प्रेम के मांसल शारीरिक पक्ष को उभारने के लिए आलेख में कुछ मामूली परिवर्तन भी किया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, रंगमंडल की प्रस्तुति में सत्यदेव दुबे ने भी चारों नारी चरित्रों के लिए अलग-अलग कलाकारों का प्रयोग किया। अनाम लड़की की प्रमुख भूमिका करने वाली अभिनेत्री को, समस्त नारी-जगत का प्रतिनिधि बनाने के लिए, आधे मुखौटे में रखा और उससे शैलीकृत अभिनय कराया। यद्यपि परिवेश की वीभत्सता के लिए दृश्य-बंध को पूरी तरह काला बनाया गया और वातावरण में मृत्यु के आतंक तथा प्रेम के माधुर्य के लिए प्रकाश-व्यवस्था में लाल, नीले हल्के पीले रंगों का इस्तेमाल किया गया। फिर भी, प्रदर्शन में उनका बल श्मशान की भयावहता तथा पुरुष पात्रों के अपराध-बोध को रेखांकित करने के बजाय प्रेम की मधुरता एवं जीवन के प्रति आस्था की भावना को पुष्ट करने पर ही रहा। "चार कहार मिलि मोरी डोलिया उठाए" को पाव-संगीत का अंग बनाकर शाश्वत नारी की चिरन्तन त्रासदी को मुखरित करने का प्रयास भी सार्थक रहा। टी.पी. जैन, श्यामानंद जालान तथा सत्यदेव दुबे की इन तीनों

<sup>1</sup> पगला घोड़ा : बादल सरकार (अनुवाद : प्रतिभा अग्रवाल) निर्देशक की दृष्टि में, पृ. 8



प्रस्तुतियों में लड़की की भूमिका क्रमशः सुधा शिवपुरी, यामा अग्रवाल और सीमा बिस्वास ने अत्यन्त संवेदनशील और प्रभावशाली रूप में निभाई।

समकालीन हिन्दी/भारतीय रंगकर्म के अत्यन्त चर्चित और प्रमुख अभिनेता-निर्देशक सत्यदेव दुबे के अनुसार, “‘पगला घोड़ा’ सिक्सटीज की शायद सबसे अच्छी ‘थिएट्रीकल’ कृति है। ‘थिएट्रीकल’ शब्द अच्छे अर्थों में इस्तेमाल कर रहा हूँ। यह वह गुण है जो अच्छे नाट्य-लेखन को आच्छादित किए रहता है।” यह नाटक निश्चय ही आधुनिक बंगला/भारतीय नाटक और रंगमंच की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

### सहायक पाठ्य-सामग्री

1. *द चेंजिंग लैंग्वेज ऑफ थियेटर* : बादल सरकार (अंग्रेजी), इन्वैक्ट : 183-184, सम्पादक : राजिन्दर पॉल
2. *द थर्ड थियेटर* : बादल सरकार (अंग्रेजी), प्रकाशक बादल सरकार, 1-ए, पियरी रोड, कलकत्ता-700006
3. *बंगाली थियेटर* : किरनमय राहा (अंग्रेजी), प्रकाशक-नेशनल बुक ट्रस्ट, ए-5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016
4. ‘संगीत नाटक’ नामक पत्रिका के अंक 22 में प्रकाशित शमीक बंद्योपाध्याय और बादल सरकार की बातचीत (अंग्रेजी)
5. ‘आज के रंग नाटक’ में इब्राहिम अल्काजी लिखित ‘टूटे हुए आइने के प्रतिबिम्ब’ तथा सुरेश अवस्थी लिखित ‘उभरती हुई तस्वीर के रंग’ नामक लेख। प्रकाशक-राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-2
6. *नटरंग* : अंक 13 और 14 (सम्पादक : नेमिचन्द्र जैन, आई-47, जंगपुरा एक्सटेंशन, नई दिल्ली-14)
7. *चार नाटकों का आईना और नाटककार बादल सरकार* : विजय तेंदुलकर (धर्मयुग : 25 अक्टूबर, 1970)
8. *भारतीय नाट्य साहित्य* : सं. डॉ. नगेन्द्र, में संकलित डॉ. श्रीकुमार बैनर्जी का लेख ‘बंगला नाटक’। (प्रकाशक : एस. चाँद एण्ड कम्पनी, राम नगर, नई दिल्ली)
9. *एवम् इन्द्रजित और बादल सरकार का नाट्य-संसार* : जयदेव तनेजा छायाण्ट : 21, अप्रैल-जून, 1982 (सम्पादक : डॉ. शरद नागर, उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी, कैसरबाग, लखनऊ)

<sup>1</sup> राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, रंगमंडल की ‘पगला घोड़ा’ की प्रस्तुति की स्मारिका में प्रकाशित ‘निर्देशकीय’ से उद्धृत।

- बादल सरकार और उनके नाटक ‘पगला घोड़ा’ पर हिन्दी-अंग्रेजी में कोई भी पुस्तक उपलब्ध नहीं है। कुछ छुट-पुट लेखों से ही थोड़ी बहुत परोक्ष सहायता मिल सकती है।

### सम्भावित प्रश्न

1. 'पगला घोड़ा' की मूल सम्वेदना क्या है?
2. "बादल सरकार मध्यवर्गीय चेतना के अद्भुत चितरे हैं।" 'पगला घोड़ा' के आधार पर इस कथन की पुष्टि कीजिए।
3. चरित्रांकन की दृष्टि से 'पगला घोड़ा' की समीक्षा कीजिए।
4. "बादल सरकार संवादों और स्थितियों के नाटककार हैं।"  
'पगला घोड़ा' की दृष्टि से इस कथन की समीक्षा कीजिए।
5. "'पगला घोड़ा' मृत्यु का नहीं जीवन का संदेश देता है।" इस नाटक के उद्देश्य के विषय में अपना मत व्यक्त कीजिए।
6. 'पगला घोड़ा' के रंग-शिल्प की मौलिकता एवं विशिष्टता का विवेचन कीजिए।
7. अभिमंचन की दृष्टि से 'पगला घोड़ा' के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।
8. "'पगला घोड़ा' आधुनिक भारतीय नाटक और रंगमंच की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।" सिद्ध कीजिए।